मंत्र विज्ञान
दीक्षा एवं अभ्यास
स्वामी वेद भारती

Books by Swami Veda Bharati

108 Blossoms from Guru Granth Garden
God
Kundalini: Stilled or Stirred?
Mantra and Meditation
Meditation and the Art of Dying
Meditation: the Art & Science
Night Birds: A Collections of Short Writings
Philosophy of Hatha Yoga
Sayings-Saying Nothing Says it All
Song of the Lord: Gita in Yoga Vasistha
Subtler than the Subtle
The Himalayan Tradition of Yoga Meditation
The Light of Ten Thousand Suns
What is Right with the World?
Yoga Sutra of Patanjali Vol.I (Samadhi-Pada)
Yoga Sutra of Patanjali Vol II (Sadhana-Pada)
Yogi in the Lab
and many more...

For a complete list of Swami Veda's writings, recordings and videos please write to: info@yogapublications.org
or
visit www.yogapublications.org

मंत्र विज्ञान
दीक्षा एवं अभ्यास

स्वामी वेद भारती

अनुवादः चित्रा अवस्थी

ISBN : 978-81-8037-109-7

Himalayan Yoga Publications Trust (HYPT)
Swami Rama Sadhaka Grama (SRSG)
Virpur Khurd, Virbhadra Road,
Rishikesh 249203, India
Tel: +91-135-245 3030
Fax: +91-135-245 0831
Email: info@yogapublications.org
www.yogapublications.org

Printed in India

बचपन से ही हमें बाहरी जगत के पदार्थों को देखने, उनका निरीक्षण तथा सत्यापन करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। परन्तु मंत्र दीक्षा अथवा मंत्र ग्रहण स्वयं का आंतरिक अवलोकन, तथा निरीक्षण करने के मार्ग में एक कदम है। यह कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं है। अतः मंत्र अथवा ध्यान एवं धर्म को एक में मिलाकर भ्रमित न हों। ये आपस में नितांत भिन्न हैं।

मंत्र एक ध्वनि, एक अक्षर अथवा ध्वनियों का समूह है। इसकी सार्थकता इसके अर्थ में नही अपितु अक्षरों के ध्वन्यात्मक स्पंदन में होती है। यह मस्तिष्क को एकाग्रता का केंद्र प्रदान करता है तथा व्यक्ति को उसकी आंतरिक स्थिति के प्रति सजग होने में मदद करता है। यह व्यक्ति के स्व को पहचानने तथा आंतरिक तथा बाह्य संसार में सामंजस्य स्थापित करने का एक तरीका है। मंत्र एक मित्र के समान होता है, जो एकाग्र होने में मस्तिष्क की मदद करता है और धीरे धीरे साधक को मौन की गहन स्थिति में अंतर्निहित चेतना के केंद्र की ओर ले जाता है। यह आत्मा की भूमि पर बोया गया आध्यात्मिक बीज है। यह एक ऐसा पथप्रदर्शक है, जो व्यक्ति को चेतना के विभिन्न

स्तरों तक पहुंचाता है और अंततः उसे उस बिंदु पर पहुंचा देता है, जहां व्यक्तिगत चेतना तथा परम चेतना का मिलन होता है।

मंत्र आत्मज्ञानके मार्ग में एक महत्वपूर्ण साध न है। आपको ध्यान के नियमित अभ्यास, मंत्र के स्मरण तथा उसे जीवन का एक भाग बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

ध्यान के समय सचेत एवं मौन हो कर मंत्र का प्रयोग करें। अन्य समय में आप इसका प्रयोग सचेतन या अचेतन भाव से कर सकते हैं। समय के साथ आप मंत्र को अपने दैनिक जीवन में भी अपना पथ प्रदर्शक पाएंगे।

स्वामी राम

विषय सूची :

मंत्र क्या और क्यों

राजयोग योग की वह समग्र परंपरा है, जिसका वर्णन पतंजलि ने योगसूत्र में किया है। स्वात्माराम आदि हठयोग के महानतम् विद्वानों ने भी योगसूत्र को महत्व दिया है।

हिमालय के योगियों द्वारा की गई इसकी व्याख्या तथा प्रयोगात्मक एवं दीक्षात्मक मार्गदर्शन द्वारा निरूपित इसका रूप हिमालय की परंपरा के नाम से जाना जाता है। फिर भी प्रत्यक्ष दीक्षा के बिना पतंजलि का आशय समझना संभव नहीं है। साधकों के लिए प्रथम चरण मंत्र दीक्षा है, जो कि मन को एकाग्र करने की ध्वनि–तरंगात्मक इकाई है।

मंत्र शब्द का अर्थ

मंत्र शब्द का संबंध अंग्रेजी के "Man" शब्द से है। ग्रीक भाषा का शब्द menos अर्थात मस्तिष्क से लैटिन भाषा का शब्द mens निकला। अंग्रेजी के शब्दों माइंड तथा मेंटल का मूल भी यही शब्द है। menos, mens, mental, man, mind तथा मंत्र, इन सभी शब्दों के मूल में संस्कृत की धातु 'मन' है जिसका अर्थ है ध्यान करना है।

man अथवा मनुष्य वह प्राणी है, जो ध्यान कर सकता है। उसके पास एक मस्तिष्क है, जिसके द्वारा वह ध्यान करता है। ध्यान के लिए वह एक शब्द, एक मंत्र पर अपने मस्तिष्क को केंद्रित करता है।

भारत तथा एशिया के अन्य भागों में मंत्र संस्कृति का केंद्र तथा व्यक्ति के जीवन का अहम् भाग होता है। यहां तक कि बिना मंत्र के व्यक्ति का जीवन उसी प्रकार माना जाता है, जैसे बिना नमक के दाल हो। ऐसे व्यक्ति के जीवन में एक प्रकार का अभाव होता है। बिना मंत्र के मनुष्य अधूरा होता है।

मंत्र क्या है

मंत्र एक शब्द है, शब्दों की एक शृंखला है। मंत्र एक प्रार्थना है, किन्तु उस अर्थ में नहीं जिस अर्थ में सामान्यतः 'प्रार्थना' शब्द का प्रयोग होता है, अपितु यह हमारी निम्न चेतना एवं उच्चतर चेतना, जिसे हम दिव्य चेतना या दिव्य जीवन शक्ति भी कहते हैं, के बीच एक कड़ी के रूप में होता है। एक मंत्र ध्वनि तथा विचार की इकाई होता है। मंत्र योग के छात्र या साधक को किसी विशेष आध्यात्मिक उद्देश्य की पूर्ति हेतु सतत् स्मरण के लिए प्रदान की गई ध्वनि या ध्वनियों की श्रृंखला है।

हमारी चेतना के जाल के आंतरिक मानचित्र में चेतना दो रूप धारण करती है: ध्वनि एवं प्रकाश। एक विशेष स्थिति में ध्वनि एवं प्रकाश की ऊर्जा एकीकृत हो जाती हैं। विकास की हमारी वर्तमान अवस्था में हम इन का अनुभव अलग–अलग करते हैं, अतः हम मंत्र का आरम्भ मंत्र की ध्वनि से करते हैं। प्रकाश की दीक्षा इसके बाद आती है।

मूलतः मंत्र के दो पक्ष होते हैं, जिन्हें समझने की आवश्यकता है : पहला पक्ष यह है कि यह एक अक्षरीय संगठन है जिससे एक ऐसी ध्वनि उत्पन्न होती है जो कि मस्तिष्क पर विशेष प्रकार का प्रभाव डालती है, विशेषतः यदि इसे मानसिक रूप से दोहराया जाए। मंत्र का दूसरा पक्ष उसका अर्थ है।

पुनरावृत्त ध्वनि का प्रभाव

मंत्र के सिद्धांत के मूल में यह तथ्य है कि ध्वनि तथा अक्षरों में विशेष मानसिक तथा मनोवैज्ञानिक संवेगों को उद्वेलित करने की क्षमता निहित होती है। प्रत्येक अक्षर अपने अंदर चेतना की एक विशिष्ट किरण को धारण किए है। जब आप वर्णमाला के किसी विशेष अक्षर या अक्षरों के किसी समूह का स्मरण करते हैं तब वे विशिष्ट विचार तथा मानसिक स्पंदन उत्पन्न करते हैं।

ध्वनियों का अपना विशिष्ट गठन तथा भाव होता है। किसी भी शब्द में निहित विचार मस्तिष्क का स्पंदन होता है, किंतु सभी स्पंदन एक समान नहीं होते हैं। भिन्न–भिन्न अक्षर भिन्न–भिन्न स्पंदनों की शक्ति का केंद्र होते हैं। इसे हम मोटे तौर पर विशेष शब्दो की ध्वनि द्वारा समझ सकते हैं। जैसे, मैं किसी ऐसी जगह

जाता हूं, जहां मेरी भाषा समझने वाला कोई न हो। मैं अपनी किसी सनक में होटल के कमरे से बाहर निकल कर सड़क पर जाता हूं और एक व्यक्ति को अपनी ओर आते हुए देखता हूं। वह व्यक्ति मेरी भाषा नहीं जानता है। मैं उसके पास जाकर अत्यंत कटु स्वर में उससे कहता हूं, "फट"।

वह व्यक्ति इस शब्द का अर्थ नहीं जानता है किंतु उस ध्वनि का कुछ प्रभाव उसके मस्तिष्क पर पड़ता है। दूसरे दिन उस बेचारे व्यक्ति को अपनी आवाज से डरा देने के विषय में सोचकर मुझे बुरा लगता है, और मैं इसकी भरपाई करना चाहता हूं। फिर एकबार मैं सड़क पर जाता हूं और जिस पहले व्यक्ति को मैं देखता हूं –यह व्यक्ति भी मेरी भाषा नहीं जानता है– उसके पास जाकर कोमल स्वर में कहता हूं "शांति"। इन दोनों ध्वनियों में क्या अंतर है? दोनों ध्वनियों में गुणात्मक अंतर है। कवि एवं दक्ष लेखक इस तथ्य से पूर्णतः अवगत होते हैं और अपनी रचनाओं में अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए ध्वनि का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार, ध्वनि का अपने आप में एक प्रभाव होता है, जोकि उसके अर्थ से निरपेक्ष होता है। यह प्रभाव मस्तिष्क पर एक छाप छोड़ता है। इसी प्रकार से प्रत्येक मंत्र का अपना अलग ध्वन्यात्मक स्पंदन होता है।

ऊर्जा की शक्ति के रूप में मंत्र

अब हम इसे थोड़ा आगे बढ़ा सकते हैं। यह संपूर्ण विश्व चेतन शक्तियों के द्वारा संचालित है, कुछ लोग इन चेतन शक्तियों को फरिश्ता, देवता, अवतार, ईश्वरीय अभिव्यक्ति आदि कहते हैं। मंत्रों की ध्वनियां चेतना के इन्हीं विशिष्ट रूपों या पक्षों की प्रतिनिधि हैं। अतः परंपरागत रूप से हम मंत्रों को दिव्य शक्ति की ध्वनि–तरंगात्मक अभिव्यक्ति मानते हैं। ईसाई धर्म में, सूफियों में तथा यहूदी–कबाला में कुछ शाखाओं में यहां तक कहा जाता है कि ईश्वर का नाम ही स्वयं ईश्वर है।

इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क का गठन अलग होता है। मस्तिष्क में बहुत से जन्मों की छापें एकत्र होती हैं। इन्हें हम संस्कार कहते हैं। हम जो भी कर्म करते हैं, हमारे अंदर जो भी इच्छाऐं उत्पन्न होती हैं, या जो संवेग उत्पन्न होते हैं, वे सभी इन्हीं संस्कारों द्वारा परिचालित होते हैं। इन्हीं संस्कारों के योग से हमारे व्यक्तित्व का निर्माण होता है। यदि हम अपना परिष्कार करना चाहते हैं, तो हमें इन संस्कारों के प्रारूप में परिवर्तन करना सीखना होगा। यदि एक ग्लास ठंडे पानी से आधा भरा हो और मैं उसमें गर्म पानी डाल दूं, तो पानी के स्वरूप में अंतर आ जाएगा।

यदि मेरे मस्तिष्क में ऐसी छाप है जो कि कटु विचारों की ओर ले जाती है, और मैं प्रतिदिन कई घंटों तक किसी मधुर विचार को अपने मस्तिष्क में डालता रहूं, और ऐसा दस पंद्रह या बीस सालों तक करता रहूं तो मेरा मस्तिष्क इस नई छाप को ग्रहण कर लेगा और उसमें अनिवार्य रूप से परिवर्तन आएगा। इस प्रकार मंत्र हमारे स्वभाव को बदलता है, उसे अधिक संस्कारित, शांत तथा सौम्य बनाता है। यदि समग्र रूपमें किसी व्यक्ति के मस्तिष्क की छाप उसे विक्षुब्ध एवं अशांत विचारों की ओर ले जाती है, तो उसे शांतिदायक मंत्र दिया जाता है। यदि उसके विचार स्वभाव से इसे निश्चेष्ट बनाने वाले हो तो उसे प्रेरक मंत्र दिया जाता है। मंत्र का बार–बार स्मरण करते रहने से उस मंत्र की छाप व्यक्तित्व मे इच्छित परिवर्तन ले आती है।

दिव्य सत्ता का एक नाम तथा उसका ध्वनि–तरंगात्मक शरीर होने के कारण मंत्र की गहन पर्तो में इस प्रकार अंकित हो जाता है कि मनुष्य के अंदर की जीवात्मा दिव्य सत्ता की उपस्थिति के लिए मार्ग छोड़ देती है तथा समर्पण कर देती है। मंत्र के साथ ध्यान शब्दहीन प्रार्थना है तथा भक्ति का सूक्ष्मतम भाव तथा अभ्यास है। 'मेरा कुछ नहीं है' 'सब कुछ तेरा ही है, 'केवल तेरा ही है – यह ही चरम भाव है जिससे

कि अंततः व्यक्ति ईश्वर का निवास बन जाएगा, दैवी सत्ता के हाथों का एक यंत्र बन जाएगा, एक ऐसा यंत्र बन जाएगा जिसके द्वारा केवल परमात्मा ही कार्य करे। यह अभ्यास तब प्रारम्भ होता है जब व्यक्ति मंत्र को सप्रयास 'करना' बंद कर देता है और मंत्र को केवल आंतरिक गहराइयों से उठने देता है तथा आंतरिक स्तर पर उसे सुनता है।

व्यक्तित्व तथा उद्देश्य के अनुरूप मंत्र

मंत्र द्वारा व्यक्तित्व में परिवर्तन के विचार पर आपत्ति करते हुए कोई कह सकता है, "मैं जैसा हूँ स्वयं को पसंद हूं। मैं अपने व्यक्तित्व में परिवर्तन नहीं चाहता और मैं नहीं चाहता कि कोई इसके साथ छेड़छाड़ करे।"

यदि आप मंत्र ग्रहण करने की दिशा में पहल न भी करें तो भी विश्वास के साथ साधारण ध्यान तथा सोहम् का जाप भी आपके अन्दर परिवर्तन लाएगा यद्यपि ये व्यक्तिगत मंत्रों के समान प्रभावषाली नहीं होते हैं जब किसी को व्यक्तिगत मंत्र, जिसे दीक्षा मंत्र या गुरू मंत्र भी कहा जाता है, दिया जाता है तो यह प्रक्रिया इसी प्रकार होती है मानों गुरू परंपरा के सार्वभौम मस्तिष्क

मे से एक बूंद या एक बीज ले कर दीक्षित व्यक्ति के मस्तिष्क में उसे स्थापित कर दिया गया है। इस प्रक्रिया को दीक्षा कहा जाता है तथा इसमें गुरू परंपरा में कमशः साधकों से होते हुए ऊर्जा का कोई रूप, चाहे कितने ही छोटे स्तर में क्यों न हो, दीक्षा प्राप्त करने वाले तक पहुंचता है। ई० पूर्व चौदहवीं शताब्दी में लिखे गए बृहदारण्यकोपनिषद में हम परंपरा के गुरूओं की साठ पीढ़ियों की सूची देख सकते हैं। एक गुरू से उसके गुरू, इस प्रकार पीछे जाते हुए हम प्रथम गुरू स्वयंभू ब्रहम तक पहुंच जाते हैं। उपनिशद कहता है, "स्वयंभूब्रहमणे नमः"।

इस प्रकार मंत्र, समाधि की उच्चतम अवस्था में प्राचीन ऋशियों की चेतना में उद्घाटित होने वाली ध्वनियां, विचार अथवा षब्द है। मंत्र श्रुति के रूप में आत्मा के अंदर जागृत हुए और परंपरा में हस्तांतरित हुए।

भिन्न–भिन्न लोगों के लिए भिन्न–भिन्न मंत्र हैं। यह किस प्रकार होता है? इसके लिए हमें योग परंपरा के इतिहास के विषय में कुछ चर्चा करनी होगी। कभी–कभी लोग पूछते हैं, "भावातीत ध्यान क्या है? यह किस प्रकार योग परंपरा के अंतर्गत आता है?" 'भावातीत' शब्द एक आधुनिक समकालीन अभिव्यक्ति

है। निश्चय ही यह एक संस्कृत शब्द नहीं है। यह किसी और शब्द का अनुवाद है। कुछ लोग पूछते हैं, "जेन ध्यान क्या है? यौगिक ध्यान की तुलना में यह किस प्रकार का है?"

लगभग 3000ई0पू0 भारत 18वीं सदी के अमेरिका की तरह अग्रदूतों का देश था। सभी दिशाओं से आए हुए प्रवासियों ने यहां आकर जंगलों को काट कर रहने योग्य स्थान बनाया, नगर बसाए, धर्मों की स्थापना की। उनमें से कुछ लोग, जो अत्यंत दार्शनिक प्रवृत्ति के थे, इस सबसे दूर जंगलों में आश्रम बना कर तथा पर्वतों की गुफाओं में रहने लगे। उन्होंने अपने लिए आत्म–अन्वेषण एवं आत्म विजय का मार्ग चुना। जब लोग नगरों और गांवों के अपने जीवन से थक जाते थे और थोड़ी शांति चाहते थे, तब वे इन आश्रमवासी महान गुरूओं के पास जाते थे और कुछ समय उनके चरणों में रह कर कुछ मानसिक शांति, कुछ दिशा निर्देश और कुछ ज्ञान प्राप्त करते थे और तब वे वापस अपने गांवों और शहरों में जाकर पुनः अपना सामान्य सांसारिक जीवन बिताते थे। इनमें से कुछ आश्रम विशाल विश्वविद्यालयों में परिवर्तित हो गए।

उदाहरण के लिए, सिकंदर, जिसने ई0पू0चौथी शताब्दी में भारत पर आकमण किया था, उस क्षेत्र के बहुत

निकट आ गया था, जहां तक्षशिला विश्वविद्यालय था। वहां पर एकसाथ बीस हजार विद्यार्थी रहते थे। किंतु प्राचीन भारत में शिक्षा कभी भी अध्यात्म से पृथक् नहीं होती थी। इसमें हमेशा चारित्रिक प्रशिक्षण सम्मिलित रहता था। ब्रह्मचर्यकाल में प्रत्येक को यह सिखाया जाता था कि वह अपना कार्य किस प्रकार करे जिससे समाज को लाभ हो और किस प्रकार वह मनुष्य के रूप में अपने उद्देश्य को पूर्ण करें तथा आध्यात्मिक उन्नति करें।

हिमालय के महान योगी, जो योग के संस्थापक थे, और जिनके अंतर्ज्ञान एवं विद्वता के माध्यम से यह ज्ञान आगे आने वाली पीढ़ियों को हस्तांतरित किया जाता रहा है, अंतर्ज्ञान के अतिरिक्त स्वयं पर प्रयोग भी करते थे।

हम जिस प्रकार के विचारों का चिंतन करते हैं, उनसे ही हमारे व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सामान्यतः हम किसी एक विचार पर अधिक देर तक रूकते नहीं हैं। हमारा चिंतन सुसंगत नहीं होता है। हमारे विचार अव्यवस्थित तथा गड्ड–मड्ड होते हैं। मंत्र का अभ्यास किसी एक विचार को लेकर चलने का अभ्यास है और उस विचार पर इस प्रकार रूकने का अभ्यास है कि उसका मस्तिष्क पर एक निश्चित प्रभाव पड़े।

अतः योग परंपरा के महान गुरू इस प्रकार भी कह सकते हैं, "पुत्र, तुम्हारे अंदर पर्याप्त अग्नि तत्व नहीं है। तुम्हें अग्नि का मंत्र दिया जाएगा। ज्योति के समक्ष बैठो, उसकी ओर देखो; और इस विशेष अग्नि मंत्र का अपनी श्वास के साथ मानसिक रूप से स्मरण करो। अथवा इसे आंतरिक रूप से सुनो। छः महीनों में तुम्हारे अंदर कुछ परिवर्तन आएंगे जो कि अत्यंत सकारात्मक होंगे।" दूसरे विद्यार्थी से कहा जा सकता है," तुम्हारे अंदर जो कुछ भी कमी है वह शीतलता एवं जल तत्व के प्रवाह की कमी है। अतः तुम्हे जल का मंत्र दिया जाएगा जिस पर तुम्हें जल के प्रवाह के निकट बैठ कर ध्यान करना होगा।" इस प्रकार कुछ समय के बाद दृश्य तथा एक विचार, जिसको एकाग्रता के साथ लगातार स्मरण किया जाता है साधक के व्यक्तित्व में अत्यंत सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवर्तन लाते हैं।

व्यक्तित्व में क्रमिक परिवर्तन

मानवीय व्यक्त्वि में रातोंरात परिवर्तन नहीं आते हैं। रात में सोने से पहले दर्पण में अपना चेहरा देखें। अगले दिन प्रातः उठकर फिर देखें। आपका चेहरा वैसे का वैसा ही होगा। फिर शाम को देखें। सुबह से शाम तक आपका चेहरा वही रहा। फिर सुबह, फिर शाम,

वही चेहरा। आज से पांच या दस साल तक आप निरंतर ऐसा करते रहें, फिर उसके बाद आज की अपनी तस्वीर निकाल कर देखें। ऐसा कब हुआ था कि रात को आप बिस्तर पर गए तब आपका चेहरा कुछ और था और जब आप सुबह उठे तो यह बदला हुआ था।

मानवीय व्यक्तित्व में परिवर्तन अत्यत सूक्ष्म तथा दुर्ग्राह्य होते हैं। जो लोग ध्यान जैसा कोई अभ्यास शुरू करते हैं और मंत्र ग्रहण करते हैं, अधीर हो उठते हैं, क्योंकि मस्तिष्क में परिवर्तन की गति बहुत धीमी होती है। किसी ने मुझसे फोन पर पूछा," मैने तीन महीने पहले मंत्र लिया था। मुझे ज्ञान कब प्राप्त होगा।" आध्यात्मिक प्रगति एवं नियमित विशेष अभ्यास को साधना कहते हैं। सामान्यः यह एक धीमी, हल्की तथा कमिक प्रकिया होती है। इसमें जल्दबाजी नहीं की जा सकती, क्योंकि इस प्रकिया में बहुत कुछ आत्मसात करना होता है। लेकिन लोग अधीर हो उठते हैं।

मंत्र प्रयोग के विभिन्न मार्ग

आपकी चेतना के मर्म तक पहुंचने के बहुत से मार्ग हो सकते हैं। ध्यान इसी विषय से संबंधित है। स्व को प्राप्त करने के बहुत से मार्ग हैं। विभिन्न व्यक्तित्वों

के अनुरूप इसकी बहुत सी विधियां तथा पद्धतियां प्रदिष्ट की जाती हैं। कुछ लोग मोमबत्ती की लौ पर ध्यान कर सकते हैं। कुछ लोग एक प्रकार का श्वास–प्रश्वास का अभ्यास कर सकते हैं, तो कुछ लोग दूसरे प्रकार का अभ्यास अपना सकते हैं। कुछ लोग मंत्र की ध्वनि को सुन सकते हैं, और कुछ संगीत के किसी विशेष स्वर के साथ मंत्र को सुन सकते हैं।

कुछ लोगों को चेतना के विशेष केंद्र पर मंत्र के अभ्यास के साथ ध्यान केंद्रित करना सिखाया जा सकता है। आजकल अधिकतर लोगों को सरल मंत्रों का अभ्यास करवाया जाता है। और उसके बाद कुछ निश्चित समय के लिए अधिक जटिल मंत्रों का अभ्यास करवाया जाता है। कभी – कभार विशेष आध्यात्मिक परिणाम प्राप्त करने के उद्देश्य से कुछ समय के लिए किसी मंत्र का अभ्यास आंतरिक अवधान या होम के साथ भी करवाया जाता है, जिससे उसकी तीव्रता दस गुनी बढ़ जाती है। यह किसी विशेष विचार को मस्तिष्क में अंकित करने की विशेष विधि है। इस प्रक्रिया से साधक के लिए कहीं पर मानों एक द्वार सा खुल जाता है, और साधक जिस भी स्थिति में हो, उसका पड़ाव थोड़ा निकट आ जाता है।

राजयोग तथा इसके विभिन्न मार्ग

महान गुरू, हिमालयी योग की परंपरा के संस्थापक आत्म विजय, आत्म अन्वेषण तथा हमारी उच्चतम चेतना के अंतस्तल तक पहुंचने की सभी भिन्न–भिन्न पद्धतियों में दक्ष थे। परंतु, प्रत्येक साधक जिसे वे प्रशिक्षण देते थे, इतना योग्य नहीं होता था कि वह ध्य ान के सभी क्षेत्रों में दक्षता प्राप्त कर सके।

कुछ लंबे समय तक केवल शारीरिक योग का अभ्यास करते रहे। कुछ ने ध्वनि पर ध्यान केंद्रित करने में अच्छी प्रगति प्रदर्शित की। वे योग की बृहत्तर प्रणाली के अंतर्गत आने वाली अलग–अलग प्रणालियों के विशेषज्ञ बन गए और उन्होंने अपने आश्रम तथा शिक्षण केंद्र स्थापित कर लिए। और इस प्रकार वर्तमान काल में योग की विभिन्न शाखाएं हठ योग, नाद योग, योग, लय योग आदि प्रचलित हो गई हैं।

विद्यार्थी किसी एक आश्रम में आते हैं, रहते हैं और कुछ समय तक किसी एक मार्ग के अंतर्गत अभ्यास करते हैं। अब, होता यह है कि कुछ विद्यार्थी स्वयं से कहने लगते हैं, "यह सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।" वे ऐसा क्यों करते हैं? क्योंकि इस मार्ग से उन्हें सहायता मिली होती है। "मैंने इससे बहुत लाभ प्राप्त किया", वे कहते हैं। लेकिन दूसरा व्यक्ति कहता है," अरे, वे लोग।

मैं वहां रहा हूं। मैंने उसे आजमाया है, लेकिन मुझे उससे कुछ लाभ नहीं प्राप्त हुआ।" अब, जैसा कि आप जानते हैं, महान गुरूओं के शिष्य योग की अलग–अलग शाखाओं के विशेषज्ञ थे अतः उनमें से प्रत्येक योग की किसी एक शाखा का ही प्रशिक्षण दे सकता है। जिसे वह मार्ग अनुकूल पड़ा तथा उससे उसकी उन्नति हुई उसने उस मार्ग तथा गुरू को ही सर्वश्रेष्ठ मान लिया तथा जो अनुकूल नहीं पड़ा उसे व्यर्थ मान लिया।

किंतु राजयोग, अर्थात उस मुख्य मार्ग पर, जिसके अंतर्गत योग के ये सभी मार्ग समाहित हैं, चलने के योग्य विरले ही माने गए। राजयोग के अंतर्गत पद्धतियों में बहुत भिन्नता है, परंतु ये सब मूल व्यवस्था के अंतर्गत ही आती हैं। यह सभी शाखाएं – प्रशाखाएं तथा व्यवस्थाएं एक महान व्यवस्था का अंग हैं, जिसमें अलग–अलग व्यक्तियों के अनुरूप बहुत सी व्यवस्थाएं, पद्धतियां तथा मंत्र हैं। और हमारी परंपरा का मार्ग राजयोग का मार्ग है।

बहुत से शहरों और देशों में लोगों ने मुझसे पूछा, आपके योग की ज़ेन से किस प्रकार तुलना की जा सकती है?" मैं किस प्रकार से इस प्रश्न का उत्तर दे सकता हूं? अतः मैं पूर्ण नम्रता के साथ कहता हूँ

कि जो कुछ भी ज़ेन में है, वह योग में भी है। किंतु जो कुछ भी योग में है, वह ज़ेन में भी हो यह आवश्यक नहीं है। भावातीत ध्यान एक अन्य उदाहरण है, जिसमें एक मंत्र को चुन कर एक विशेष ढंग से उसका प्रयोग किया जाता है जो कि मंत्र प्रयोग का पूर्णतः उचित तरीका है। जब महर्षि महेश योगी यूरोप और अमेरिका गए, तब उनके पास पश्चिम को देने के लिए बहुत कुछ था। अवश्य उनके जनसंपर्क प्रबंधकों ने उनसे कहा होगा, "योगी, सुनो ! ज्ञान एवं दर्शन की महान बड़ी–बड़ी बातें यहां काम नहीं आने वाली हैं। आपको इन्हें सुंदर ढंग से प्रस्तुत करना होगा। आप ऐसा करें कि इसका छोटा सा भाग लें और उसे अच्छी तरह से सजा लें। इसे एक आकर्षक आवरण में रखें, इसके लिए अच्छा सा मूल्य निर्धारित करें, इसके साथ कुछ और छोटी–छोटी चीजें लगा दें, और लोगों से कहें कि इतने या कितने भी वर्षों में, आप को आत्मज्ञान प्राप्त हो जाएगा, अथवा यह किसी और तरीके से आपके लिए लाभप्रद होगा।" लेकिन यह योग की व्यवस्था का एक छोटा सा अंश मात्र है। इसी प्रकार विपश्यना है। विपश्यना का अभ्यास करने वाले अधिकतर व्यक्ति, जिनसे मैं मिला हूं, शारीरिक संवेदनाओं से ही बंध कर रह गए हैं। मैंने ऐसे लोगों को भी देखा है, जो विगत पच्चीस वर्षों से अभ्यास कर रहे हैं और शारीरिक संवेदनाओं

से आगे नहीं बढ़ सके हैं। वे आगे बढ़ सकते थे, परन्तु उनमें से बहुतों के गुरू यह नहीं जानते कि उन्हें नाम–रूप से आगे किस प्रकार ले जाया जाए।

इसी प्रकार की स्थिति जेन मे है। यद्यपि जेन मे कुछ ऐसे सम्प्रदाय भी हैं, जो मंत्र की अनुमति देते हैं। फिर भी जेन का अभ्यास करने वालों में बहुतों को विचार से आगे जाने में कठिनाई होती है। वस्तुतः इन सभी पद्धतियों को महावाक्य तथा मंत्र के साथ ध्यान के वैदांतिक चिंतन में समाहित कर देना चाहिए। एक ऐसा बिंदु जहां मंत्र तथा विचार दोनों का एकाकार हो जाता हैं, हमें उस स्थान का अनुभव करना चाहिए। हिमालय की योग परंपरा का यह सौंदर्य है कि यह इन सभी को अपने में समाहित करती है। ऐसा भी नहीं है कि ये अलग–अलग हैं ओर इन्हें सप्रयास एक किया जा रहा हो, अपितु इसके विपरीत इन्होंने एक ही व्यवस्था से निकल कर अलग–अलग रूप धारण कर लिए और प्रत्येक ने अपनी अलग दिशा में विकास किया।

दीक्षा के लिए मंत्र के चयन का आधार

मंत्र किसी व्यक्ति के लिए समुचित तथा अनुकूल एक शब्द या शब्दों की श्रंखला है। अब, कोई व्यक्ति दीक्षा

प्रदान करने वाले से कह सकता है, "आप तो मात्र मेरा नाम ही जानते हैं। आप मेरे लिए मंत्र का चयन कैसे कर सकते हैं?" इस शंका समाधान यह है कि ज्ञान की दो पृथक प्रक्रियाएं होती हैं। इनमें से एक तर्क पर आधारित होती है तथा दूसरी अंतर्ज्ञान पर आधारित होती है। मंत्र का चयन दूसरी प्रकिया पर आधारित है।

अब इस संदर्भ में पहला प्रश्न तो यह उठता है कि आप हैं कौन? अधिकतर व्यक्ति अपनी पहचान अपना नाम समझते हैं और अपने नाम को ही स्वयं समझते हैं। परंतु आपका नाम कहां से आया?

मान लीजिए आप आज से 3000 वर्ष बाद की किसी अत्यंत विकसित सभ्यता में पैदा होते हैं जहां नाम के स्थान पर लोगों के पास केवल नम्बर होते हैं, अथवा लोगों को अपना नाम गुप्त रखना पड़ता है। हर प्रकार की संभावना हो सकती है। ऐसे में आप कौन होंगे? और फिर जब आपका जन्म हुआ था तो आपने मां के गर्भ से बाहर आते ही अपने नाम की उद्घोषणा नहीं की थी। संभवतः जब आप डेढ़ या दो वर्ष के रहे होंगे, तब आपके अंदर किसी ने कहा होगा," ये लोग एक शब्द को बोलते हैं और मेरी ओर देखते हैं। जरूर यही मेरा नाम होगा।" यह अनुबंधित प्रतिकिया है। आप आपका नाम नहीं हैं।

व्यक्तित्व के बहुत से प्रकार होते हैं। यह तथ्य स्वयं में विज्ञान की एक शाखा का आधार है। प्रत्येक व्यक्ति की कुछ क्षमताएं होती हैं तथा कुछ कमजोरियां होती हैं। जो लोग योग के विज्ञान को जानते हैं, उन्हें इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता है कि वे व्यक्तित्व के अलग–अलग प्रकारों को समझ सकें, क्योंकि प्रत्येक मंत्र एक विशेष प्रकार के व्यक्तित्व के साथ ही मेल खाता है। दीक्षा देने का अधिकारी वह व्यक्ति होता है, जो मंत्र विज्ञान का ज्ञाता हो और साथ ही मानवीय व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को भी समझ सके।

तथापि, दीक्षा की प्रक्रिया इससे बहुत आगे तक जाती है। दीक्षा देने वाला अंतर्ज्ञान के द्वारा मंत्र प्राप्त करता है। जो व्यक्ति दीक्षा देता है, वह पवित्र, संशयहीन तथा निर्बन्ध मस्तिष्क वाला होता है तथा जब वह ध्यान में होता है, तब वह आपके व्यक्तित्व के अनुरूप मंत्र ग्रहण करके उसे आपको प्रदान कर सकता है। यह एक ऐसा क्षेत्र है, जहां हम थोड़ी हिचक के साथ प्रवेश करेंगे, क्योंकि कुछ लोग इसे स्वीकार नहीं करेंगे। कुछ लोग इसे एक रहस्य भी मान सकते हैं। आप इस बात को स्वीकार या अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र हैं। इस पर विश्वास करने या न करने के लिए आप किसी प्रकार बाध्य नहीं है। बहुत से लोग इस बात

को स्वीकार नहीं कर सकते कि इस प्रकार की कोई कृपा संभव है अतः वे व्यक्तिगत मंत्र की इच्छा नहीं करते। उन्होंने जहां तक ध्यान के विषय में जाना है, उसी आधार पर वे अपना अभ्यास जारी रख सकते हैं। परंतु हमारी परंपरा में ध्यान की उच्चतर प्रकियाएं बिना पहले व्यक्तिगत मंत्र दीक्षा नहीं सिखाई जाती हैं।

गुरू या दीक्षा देने वाला शायद ही कभी कहेगा, "मैं तुम्हें मंत्र देना चाहता हूं।" यह एक ऐसी बात है जिसकी इच्छा आपके अंदर से उठनी चाहिए। यदि आप इच्छा महसूस करते हैं तो आप इसके लिए स्वयं कहें। तब एक समय निर्धारित होता है और दीक्षा की एक बहुत सरल प्रक्रिया संपन्न होती है। परंतु यह इच्छा दीक्षा पाने वाले की चेतना के अंदर से उठनी चाहिए। यह उसका अपना आंतरिक संवेग होना चाहिए। परंतु फिर भी यदि ऐसा वेग आपके अंदर से नहीं उठता, तो भी कम से कम अपने लिए ध्यान का एक समय तो निश्चित कर ही लें। ध्यान के लिए एक समय निश्चित कर लेना भी आपको कृपा के परम स्रोत से जोड़े रखेगा।

दीक्षा की प्रक्रिया

हिमालयी – परंपरा में दीक्षा संस्कार में कुछ परंपरागत प्रक्रियाएं सम्पन्न की जाती हैं। यह दीक्षार्थी के जीवन का एक महत्वपूर्ण पड़ाव, एक निर्णायक मोड़ होता है, अतः उसे दीक्षा से कम से कम एक दिन पहले स्वयं को शुद्ध करने के लिए कहा जाता है। इसके लिए उसे सात्विक शाकाहारी भोजन करना होता है, भावनात्मक उद्वेग उत्पन्न करने वाले कार्यों से दूर रहना होता है तथा दिमाग को शान्त रखना होता है। तत्पश्चात दीक्षा के दिन दीक्षार्थी स्नान करके और धुले वस्त्र पहन कर मंत्र ग्रहण करने आता है। दीक्षा के समय दीक्षार्थी को दक्षिणा के रूप में फल एवं फूल की भेंट लाने को कहा जाता है। ये भेंटे रूप, रस, गंध, स्पर्श तथा शब्द – इन पांच इंद्रियों की प्रतीक हैं। यह ऐंद्रिक सुख को त्यागने नहीं अपितु छात्र द्वारा आध्यात्मिक विकास के वृहत्तर लाभ के लिए उनको अपने वश में करने के सच्चे इरादे के प्रतीक होते हैं।

जिस स्थान पर दीक्षा की क्रिया संपन्न होती है, वहां शिष्य को कुछ देर तक चुपचाप बैठ कर ध्यान करने के लिए कहा जाता है। तब उसे उस स्थान पर ले जाया जाता है, जहां पर दीक्षा देने वाला ध्यान कर रहा होता है। गुरू और शिष्य कुछ देर तक साथ में ध्यान करते हैं और तब मंत्र प्रदान किया जाता

है। सामान्यतः मंत्र शिष्य के दाहिने कान में धीरे से बोला जाता है और उसके बाद फिर कुछ देर तक गुरू और शिष्य एक साथ ध्यान करते हैं। शिष्य को आशीर्वाद देने के साथ ही कार्यक्रम संपन्न हो जाता है। यह उच्चतम स्तर पर आदान–प्रदान की एक प्रक्रिया है। शिष्य सत्य को प्राप्त करने के लिए और आत्म साक्षात्कार की अपनी यात्रा प्रारंभ करने के लिए अपनी उत्सुकता एवं विश्वास समर्पित करता है। दीक्षा देने वाला गुरू परंपरा द्वारा प्रदत्त कृपा का माध्यम बनकर शिष्य को मंत्र देता है और शिष्य की आध्यात्मिक उन्नति में सहायता के लिए प्रतिबद्ध होता है।

मंत्र : मनुष्य जीवन में एक सुदृढ़ शक्ति

कुछ संप्रदायों में मंत्र का प्रयोग दिन में सिर्फ बीस मिनट करने को कहा जाता है। परंतु राजयोग की परंपरा में सिखाई गई विधि के अनुसार, जैसा कि स्वामी राम ने सिखाया है, मंत्र आपका अभिन्न मित्र बन जाता है। हर समय मंत्र आपके दिमाग में रहता है: बस की लाइन में खड़े हुए, किसी से मिलने के लिए प्रतीक्षा करते हुए, कार चलाते हुए, या जब भी आपको केंद्रण की आवश्यकता हो। आपका मंत्र आपका होता है, यह आपके साथ होता है। यह एक शब्द

होता है, या एक वाक्यांश होता है, जिसे हमेशा आपके साथ होना चाहिए।

जैसे आप देखें कि इस समय आपके मन में बेतरतीब विचार और छवियां हैं, सब कुछ बाहर से एकत्र किया हुआ है। कोई बाहरी तत्व आपको उत्तेजित कर सकता है, गंभीर बना सकता है, उद्विग्न कर सकता है, या भयभीत कर सकता है। परंतु मंत्र आपके लिए एक आंतरिक तत्त्व है। इसकी उत्पत्ति आपके अंदर से है। अतः जब सारा संसार आपको उद्विग्न करने में लगा हो तो भी आपके अंदर कुछ ऐसा हो जो आपका स्थाई केंद्र हो, जिससे आपको हटना नहीं चाहिए। इस प्रकार का अभ्यास करने तथा दक्षता प्राप्त करने में समय लगता है। परंतु समय के साथ यह एक ऐसा मौन मित्र बन जाता है, जिससे आपको स्वयं पर बाहर से थोपी जा रही सभी उत्तेजनाओं एवं उद्विग्नताओं का प्रतिकार करने के लिए आश्रय मिलता है। जब आप पर्याप्त समय तक मंत्र का स्मरण होने देते हैं, तो यह आपके अचेतन का भाग बन जाता है। मंत्र आपके लिए ध्यान का द्वार बन सकता है, क्योंकि यह आपका केंद्र है, केंद्र बिंदु है। मंत्र का अभ्यास ध्यान बन जाता है।

यदि आप गुरू परंपरा के संपर्क में रहते हैं तो जैसे–जैसे आप मंत्र का प्रयोग करना सीखते जाते हैं, आपके आगे बढ़ने का तरीका बदलता जाता है। आपसे कहा जा सकता है, "आज तक तुमने इस तरीके से किया, अब तुम्हें यह तरीका अपनाना चाहिए। कभी–कभी वर्षों तक कुछ भी नहीं बदलता। परंतु अपनी दूसरों के साथ तुलना न करें और मान लें कि यदि किसी दूसरे को कोई और विधि दी भी गई है, तो आपके लिए भी कोई और विधि ही ठीक है। आपको जो विधि बताई गई है, आपके लिए वही पर्याप्त प्रभावशाली हो सकती है। यह पूर्णतः व्यक्ति की प्रकृति पर निर्भर करता है और साथ ही यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि वह परंपरा तथा शिक्षा के स्रोत के साथ किस प्रकार का संबंध रखना चाहता है।

मंत्र की गोपनीयता

मंत्र ग्रहण करने के बाद इसे गुप्त रखा जाता है। अपने मंत्र को एक रहस्य के समान गुप्त रखें और निरंतर इसका अभ्यास करते रहें। मंत्र के मानसिक अभ्यास के बहुत से उन्नत तरीके है, जिनके विषय में धीरे–धीरे क्रमशः बताया जाता है। मंत्र के रूप में जो आप गोपनीयता का अभ्यास करते हैं, वह मौन का अभ्यास है।

मंत्र केवल आंतरिक रूप से ग्रहण करने के लिए है। बोलने से शब्द की शक्ति समाप्त हो जाती है। अतः मंत्र को केवल अपने हृदय में रखना चाहिए। इसको अपना मौन मित्र बना लें, जो सदा आपके साथ रहे, चाहे आप चल रहे हो, या सोने जा रहे हो, जाग रहे हो, अथवा नहा रहे हों। यहां तक कि अपने जीवन साथी की बाहों में भी मंत्र आपके साथ ही हो। कभी आप इसके प्रति सचेत होते हैं और कभी नहीं भी होते हैं। किंतु यह निरंतर आपके साथ होता है।

यह गुरू का कर्तव्य है कि वह आपको आगे मार्ग दिखाऐ, जब आप तैयार हों तो वह आपको अगले कदम से परिचित कराऐं। यदि गुरू वास्तव में हिमालय की परंपरा से है तो जब आप तैयार हो जाएंगे तब आपको चक्रों या कुंडलिनी पर साधना करने की दीक्षा दी जाएगी।

छात्र को गुरू से संपर्क बनाए रखना चाहिए। यह संपर्क पत्रों, फैक्स या ई मेल द्वारा नहीं अपितु नित्य एक निश्चित समय पर ध्यान के लिए बैठ कर बनाया जाता है। आप पाएंगे कि एक अतिसूक्ष्म अमूर्त्त बंधन अनुभव किया जा सकता है। कभी–कभी गुरू किसी को मंत्र देता है। शिष्य कुछ समय तक गुरू के संपर्क में रहता है, फिर समय के प्रवाह में खो जाता है।

पंद्रह–बीस साल बाद कभी उन्हें गुरू तथा गुरू परंपरा से जुड़ने की आवश्यकता अनुभव होती है। ऐसी अवस्था में लोग कभी–कभी ऐसा संदेश भी भेजते हैं कि "आप अवश्य मुझे भूल गए होंगे, किन्तु मेरे मंत्र ने मुझे कभी नहीं छोड़ा।"

मंत्र एक बीज बन जाता है, जिससे आपका आध्यात्मिकता का वृक्ष विकसित होता है।

मंत्र दीक्षा के उपरांत

मंत्र का स्रोत

मंत्र अक्षरों या शब्दों के संघटन में निहित ध्वनि की इकाई होते हैं। संपूर्ण ब्रह्मांड का निर्माण एकमेव उर्जा से हुआ है, जिसकी दो किरणें ध्वनि एवं प्रकाश हैं। एक के बिना दूसरी क्रियाशील नहीं हो सकती है। आंतरिक आध्यात्मिक संदर्भ में तो यह विशेषतः सत्य है। ध्वनि की इकाई, जिसे मंत्र कहते हैं, वह नहीं है जो कानों के माध्यम से एक व्यक्ति से दूसरे तक जाती है, यह इसका भौतिक प्राकट्य मात्र है।

ध्यान की उच्चतम अवस्था में व्यक्ति का आध्यात्मिक स्वरूप दैवी परम सत्ता के साथ एकात्म हो जाता है, जो कि सर्वज्ञ है तथा समस्त ज्ञान एवं शब्द का स्रोत है। प्राचीन भाषा दर्शनशास्त्र के विद्वानों ने शब्द को ही ब्रह्म कहा है। इसके माध्यम से समस्त दिव्य ज्ञान मनुष्य के आध्यात्मिक व्यक्तित्व के लिए उपलब्ध होता है। इस अवस्था में ज्ञान पूरा वाणी या भावातीत वाणी कहलाता है।

जब ज्ञान वाणी रहित वाणी में तथा शब्दरहित शब्दों में व्यक्ति के आध्यात्मिक स्वरूप में प्रवाहित होता है, तो उसे पश्यन्ती वाणी कहते हैं।

यहां से चेतना की एक किरण प्रकट होती है तथा मस्तिष्क की भीतरी सतह को छूती है, जो कि इंद्रियों और संसार की ओर न उन्मुख होकर व्यक्ति के आत्मस्वरूप की ओर उन्मुख होती है। इस आंतरिक सतह को अंतः करण कहते हैं। यहां पर मनुष्य के आध्यात्मिक स्वरूप से होकर गुजरने वाली चेतना की किरण एक मानसिक स्पंदन उत्पन्न करती है। मस्तिष्क आकाशीय विद्युत के जैसी कौंध के सदृश बोध से उत्तेजित हो जाता है। इसके बाद तो क्षणांश में सम्पूर्ण वेद भी उद्घाटित हो सकते हैं, यह क्षणांश सेंकेण्ड के हजारवां भाग के बराबर सूक्ष्म भी हो सकता है। यह अनुभव उसी प्रकार होता है, जैसे एक बीज या सैटेलाइट से लिए गए चित्र का एक बिन्दु होता है, जिसके अंदर विशाल क्षेत्र का विस्तृत विवरण समाया होता है। यह बिंदु ऐसा होता है, जिसे अभी भी स्वयं को व्यक्त करने के लिए चित्र के रूप में विकसित होना बाकी है। इसे इस प्रकार कहा जाता है जैसे मोरनी के अंडे में मोर के पंख के सभी रंग छुपे होते हैं। यह अवस्था मध्यमा कहलाती है।

विचार जैसे-जैसे बुद्धि की गहराइयों से उठकर तार्किक मस्तिष्क की बाहरी सतह पर आता है, विचारों की शाब्दिक अभिव्यक्ति बन जाता है। शब्द और कुछ नहीं हैं, अपितु अभिव्यक्ति की एक प्रक्रिया मात्र हैं,

पहले अर्थात मध्यमा की तुलना में नई आवृत्ति का स्पंदन है। प्राचीन व्याकरणचार्यो तथा दार्शनिकों ने मस्तिष्क में शाब्दिक विचारों को वैखरी अर्थात अपसारी या रूक्ष वाणी कहा है।

अब बुद्धि से निकला हुआ यह स्पंदन, मस्तिष्क तथा तुलनात्मक रूप से नीची आवृत्ति के शाब्दिक विचार योगी के प्राणक्षेत्र में उत्तेजना उत्पन्न करते हैं, जिससे स्वर तंत्र क्रियाशील होता है, और तब सवाक् ध्वनि उत्पन्न होती है। यह विचार का अंतिम रूप होता है, जिसे दीक्षा एवं शिक्षण के समय शिष्य के कान सुनते हैं। इस प्रकार, जिसे लोग प्रकट शब्द कहते हैं, ज्ञान की निम्नतम आवृत्ति में वह अप्रत्यक्ष शब्द है। यह व्यक्तिगत मस्तिष्क की परतों के आवरण से वेष्टित होता है। वास्तविक अनावरण केवल ध्यान की उच्चतम स्थिति में होता है, जो कि आत्मा तथा परमात्मा के बीच शब्दरहित संवाद है। यह इस प्रकार है जैसे कोई व्यक्ति किसी गुफा के सबसे अंदर के कमरे मे होता है जो प्रकाश का कोष है, और जब वह बाहर आता है तो धागे के एक गोले को सुलझाता है। गुफा के मुहाने से निकलते हुए वह धागे का दूसरा सिरा शिष्य के हाथ में देता है और उसे परामर्श देता है कि वह धा गे को पकड़े हुए अंदर की ओर जाता जाए जब तक कि वह आंतरिक स्वर्णिम गर्भ गृह जो कि प्रथम एवं

अंतिम गुरू हिरण्यगर्भ है, तक पहुंच नहीं जाता है। शिष्य मंत्र की ध्वनि को ग्रहण करता है और जब तक कि वह विशुद्ध चेतना के गर्भगृह तक नहीं पहुच जाता है तब तक वह इसका प्रयोग क्रमपूर्वक गुफा के विभिन्न केंद्रों को वेधने में करता है।

अलग–अलग प्रकार की ध्वन्यात्मक इकाईयों का मस्तिष्क क्षेत्र एवं प्राण क्षेत्र में अलग–अलग प्रभाव होता है अतः आपके अंदर की भिन्न–भिन्न मनोभौतिक व्यवस्थाओं पर उनका प्रभाव भी भिन्न होता है। इसी कारण से चेतना के एक स्तर को प्रवर्तित करने के लिए आपको किसी एक विशेष मंत्र के अनुरूप ध्वनि इकाई को लेना पड़ता है। इसके बाद वर्षों में, दशकों के अभ्यास के बाद साधक ध्वनि इकाई को उसके मूल स्पंदन को प्राण में खोजने का प्रयत्न करता है, और वहां से मस्तिष्क में। इस प्रक्रिया में मंत्र हमारे संस्कारों तथा हमारे मन की अवस्था को परिवर्तित करता है तथा उसके द्वारा प्राणिक, और यहां तक कि भौतिक केंद्रों में भी, जो क्षेत्र अवरूद्ध होते हैं, उन्हें मुक्त करता है।

जप क्या है

जप किसी मंत्र का मानसिक वाचन, या कहें कि स्मरण है, जो कि क्रमशः मस्तिष्क क्षेत्र में उर्जा के स्पंदनों

को जागृत करता है। मंत्र का अभ्यास किसी विशेष क्रम की परंपरा के सुयोग्य गुरू के द्वारा मंत्र दीक्षा प्राप्त होने के बाद ही प्रारंभ होता है, शेष सब तो उसकी तैयारी है। जप के अभ्यास के बहुत से तरीके हैं। कभी–कभी लोग किसी मंत्र को उंची आवाज में दुहराते हुए नित्य जप करते हैं। कीर्तन भी जप का ही एक रूप है। पूर्णतः शुरूआती साधक के लिए सवा लाख बार अपना मंत्र लिखना भी जप का ही एक रूप है। यह जप का एक ऐसा रूप है जिसका परामर्श हमारी परंपरा में शायद ही कभी किसी को दिया जाता हो। केवल मंत्र प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त नहीं है। मंत्र के अभ्यास में प्रारंभिक से अत्यंत उन्नत चरण हैं। यह सभी अवस्थाएं जप की अवस्थाओं में हैं।

जप का उच्चतम रूप मानसिक जप है, जिसमें व्यक्ति केवल मस्तिष्क के मौन में डूबा रहता है। यहां पर मानसिक जप के अभ्यास और अनुभव की चार अवस्थाओं को समझाया गया है।

मानसिक जप की प्रथम अवस्था

एक बार व्यक्ति जब
सही आसन पर बैठ जाता है,
शरीर को शिथिल कर लेता है,
लयबद्ध तनुपटीय श्वास–प्रश्वास लेने लगता है,

पर्याप्त समय तक नाड़ी शोधन प्राणायाम कर लेता है, श्वास के प्रवाह का अनुभव करने लगता है।

तब श्वास का प्रवाह नाभि से नथुनों तक श्वास के मार्ग में अनुभव किया जा सकता है।

अथवा यह केवल नथुने में अनुभव किया जा सकता है, जैसा मंत्र दीक्षा के पूर्व सोहं के साथ अनुभव किया जाता है।

उसी ध्यान के साथ श्वास के प्रवाह को अनुभव करें। कोई झटका न हो, कोई रूकावट न हो। श्वास का सरल एवं ध्वनिहीन प्रवाह, श्वास–प्रश्वास के बीच कोई विराम नहीं। दो श्वासों के बीच के विराम को मिटाना इस प्रक्रिया का सबसे कठिन भाग है, क्योंकि यही वह द्वार है जहां से बाहरी विचार मस्तिष्क में प्रवेश करते हैं। अतः सांस छोड़ें और उसके तुरंत बाद सांस भरें, निर्विघ्न तथा धीरे–धीरे।

मंत्र को श्वास के साथ अनुभव किया जाता है। एकाक्षरी मंत्रों या बीज मंत्रों के साथ कोई समस्या नहीं होती हैं। लेकिन कुछ मंत्र पांच अक्षरों के बारह अक्षरों के या इससे भी अधिक के होते है। जो साधक इनके साथ परिचित नहीं होते हैं, उन्हें इन मंत्रों के

साथ प्रारम्भ में परेशानी आ सकती है। अतः ऐसी स्थिति में उन्हें केवल श्वास के प्रवाह के प्रति सचेत रहने तथा मंत्र को जिस भी रूप में आए श्वास के साथ आने देने का परामर्श दिया जाता है। यह कई श्वासों में विभाजित भी हो सकता है। इसमें तालमेल बैठाने का प्रयास न करें। उदाहरण के लिए यदि आपका मंत्र "ॐ नमो भगवते वासुदेवायः" है, तो आप इसके सभी शब्दों का क्रमशः श्वास तथा प्रश्वास के साथ व्यवस्थित करना चाह सकते हैं इस प्रकार और इसके लिए श्वास के प्रति सचेत रहने के कारण आप इस मंत्र को प्रवाहित होने देते हैं, जैसे एक शब्द दूसरे से निकल रहा हो। धीरे-धीरे मंत्र स्वयं ही श्वास प्रश्वास के साथ व्यवस्थित हो जाता है। जब तक कि आप को कोई और निर्देश न मिला हो, आप इसी प्रकार मानसिक रूप से जप करते रहें, लेकिन मानसिक रूप से श्वास के प्रवाह एवं स्पर्श की नथुनों में या नाभि से नथुनों तक के मार्ग में अनुभूति के साथ।

मानसिक जप की द्वितीय अवस्था

इसके पश्चात मंत्र को मात्र शब्दपूर्ण विचार के रूप में अनुभव किया जाता है।

हिमालयी परंपरा में जप की प्रक्रिया में सर्वप्रथम यह भूल जाना है कि मंत्र एक शब्द है, और शब्द को एक स्पंदन में बदल देना है।

पहली बात जो व्यक्ति सीखता है, वह अपने होठों को बंद करता है।

दूसरी बात जप करते समय अपनी जीभ को निश्चल रखना है।

तीसरी बात व्यक्ति सीखता है, वाणी से संबंधित अन्य अंगों, जैसे कंठ, को निश्चल करना।

यह सभी प्रक्रियाएं हटाने की हैं। जिस क्षण आप शिथिलता की अवस्था से बाहर आ जाते हैं, तुरंत ही दूसरे विचार भी आपके मन में प्रवेश करने लगते हैं, मंत्र वाणी से संबंधित अंगों में आ जाता है। यदि ऐसा हो तो भी मस्तिष्क को जो भी गति, जो भी आवृत्ति सरल तथा स्वाभाविक लगे, शब्दिक विचारों के रूप में मंत्र को उठने दें। इस बिन्दु पर आ कर आप श्वास पर ध्यान नहीं दे रहे होते हैं। यदि दीक्षा के पूर्व आपका श्वास प्रश्वास का प्रशिक्षण ठीक तरह से हुआ होगा तो आपकी श्वास तनुपटीय, सम तथा बिना किसी झटके या रूकावट के होगी। यदि ऐसा नहीं होता

है तो आपका श्वास प्रश्वास का प्रशिक्षण ठीक तरह से हुआ नहीं है और आपको इस पर और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। कभी–कभी आपको श्वास के प्रवाह पर ध्यान देने की आवश्यकता इसलिए भी पड़ेगी कि इससे यह पता चलेगा कि आप वास्तव में ध्यान केंद्रित कर रहे हैं या नहीं।

जप में सूक्ष्म परिवर्तन तब आता है, जब आप मंत्र 'करना' बंद कर देते हैं। मंत्र न तो आपका विचार है और न ही कुछ ऐसा है, जिसे आप करते हैं। मंत्र तो गुरू के मस्तिष्क की एक बूंद है,जिसे आपके अंदर स्थापित किया जाता है। उस मंत्र के माध्यम से आप पूरी परंपरा के साथ जुड़ जाते हैं और अब परंपरा आप का ध्यान रखेगी। अतः पहली क्रियाशील वाचिक विचारों वाली अवस्था के बाद मंत्र को उठने दें और इसकी उपस्थिति को देखते रहें। बस इसको होने दें। यदि आप अपनी इच्छा का प्रयोग करते रहेंगे, मंत्र 'करते' रहेंगे तो आप अपने साथ काम करने वाली दिव्य इच्छा या गुरू की इच्छा का मार्ग अवरूद्ध कर देंगे। अतः मंत्र को बस आने दें और इसकी उपस्थिति को देखते रहें। मंत्र की उपस्थिति के प्रति सचेत हो जाना ही वास्तविक जप है।

मानसिक जप की तीसरी अवस्था मंत्र की गहनता

अब, मंत्र की गहनता को समझने के लिए पहले आप कृपया यह समझें कि मस्तिष्क क्या है। अभी आप मस्तिष्क शब्द को केवल स्थूल क्रियाशील विचारों का एक यंत्र मात्र समझते हैं, लेकिन मस्तिष्क की केवल एक पर्त नहीं हैं। इसकी अनेक पर्तें हैं, जो अलग–अलग आवृत्तियों में स्पंदित होती हैं, और इस तरह ऊर्जा क्षेत्र जिसे मस्तिष्क कहा जाता है, गहनतर पर्तों में सूक्ष्मतर होता जाता है।

यह सामान्य धारणा है कि मस्तिष्क वह है, जिससे व्यक्ति सुस्पष्ट विचारों को सोचता है, किन्तु यह तो मस्तिष्क की सबसे उथली सतह भी नहीं है। यह तो तट से टकराने वाली समुद्र की कुछ लहरें मात्र हैं। समुद्र तट पर खेलने वाले बच्चे के लिए तो तट से टकरने वाली लहरें ही समुद्र हैं। इसी प्रकार मस्तिष्क के समुद्र के साथ हमारा संपर्क स्थूल विचारों की इन कोलाहलपूर्ण लहरों तक ही सीमित है। किंतु समुद्र की गहराई कहीं ज्यादा है। फिलीपिंस के पास मारिआना टेंच मे समुद्र पैंतीस हजार फिट तक गहरा है। यहां पर यदि विश्व के सबसे उंचे पर्वत शिखर को गिरा दिया जाए तो वह भी छः हजार फिट डूबा

रहेगा। तट से गहनतम भाग तक एक लंबा सफर है और एक गहरी डुबकी है।

गोताखोर जानते हैं कि समुद्र के अंदर हर स्तर पर पानी का अलग तापमान होता है। उसके ऊपर या नीचे पानी का तापमान अलग होता है। जब कोई समुद्र में गोता लगाता है और उष्मा की इन सतहों की सीमारेखा के बीच होता है, तो उसका आधा शरीर अलग तापमान में होता है और आधा अलग तापमान में होता है।

यह इसी प्रकार मस्तिष्क के समुद्र में गोता लगाना है। मस्तिष्क की इन गहनतर पर्तों में स्पंदन की आवृत्ति लगातार बढ़ती जाती है। जो भी विचार या शब्द आप उस सतह मे रखेंगे, वह मस्तिष्क की उस सतह की आवृत्ति पर ही स्पंदित होगा। जब आप मस्तिष्क की गहरी पर्त में गोता लगाते हैं, तो मंत्रों की आवृत्ति अनायास ही बढ़ जाती है। आप अपने आप को जिस स्तर पर पाते हैं, उसका निरीक्षण करना जारी रखिए और उसके आगे और गहराई को बेधिए।

ध्यान की सभी अवस्थाओं में जिस स्थिति में आप हैं, उसका निरीक्षण मस्तिष्क की उस सतह या उस अवस्था के प्रति सचेत रहना, एक अत्यंत शक्तिशाली

रहस्य है। इस समय आप जागृत हैं किन्तु आप अपने जागृत होने के प्रति सचेत नहीं हैं, जब आप स्वप्न देख रहे होते हैं तो आप इस बात के प्रति सचेत नहीं होते हैं कि आप स्वप्न देख रहे हैं और जब आप सो रहे होते हैं तो आप सोने के प्रति सचेत नहीं होते हैं। सचेत होने से यह अवस्थाएं दिव्य चेतना के प्रति बढ़ने वाला कदम बन जाती है।

यहां हम एक बार फिर स्पष्ट करें: मंत्र करना, मंत्र का स्मरण तथा मंत्र को सुनना, इनमें से प्रत्येक अवस्था में अन्य विचार तथा छवियां मंत्र के साथ–साथ लगातार आती प्रतीत होती है। मस्तिष्क के क्रिया कलापों का निकट से निरीक्षण करने पर मैंने दो तथ्य बड़े स्पष्ट देखे:

1– पहला तो यह कि मंत्र तथा अन्य विचार साथ आते प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तव में उनके बीच अंतराल होता है तथा एक के बाद एक आते हैं परंतु मस्तिष्क इतनी तेजी से चलता है कि हम समझ ही नहीं पाते हैं कि ये विचार एक के बाद एक आ रहे हैं। इसका उपाय दो श्वासों के बीच के अंतराल को कम करना है और यह संकल्प करना है कि मंत्र के बीच का अंतर समाप्त हो जाए। इस प्रकार भी संकल्प किया जा सकता है कि अगले एक मिनट तक मैं

मंत्र के अलावा किसी अन्य विचार को अपने मस्तिष्क मे नहीं आने दूंगा।

प्रयोग करके देखिए। इसी समय, एक मिनट के लिए। बस बैठ जाएं, शरीर को शिथिल कर दें, श्वास को स्थिर होने दें और एक मिनट के लिए संकल्प करें कि अगले एक मिनट तक आप अपने मंत्र के अतिरिक्त कुछ नहीं सोचेंगे। अब शुरू करें। एक मिनट के बाद मंत्र को मन में रखते हुए, धीरे से अपनी आंखें खोलें।

इस तरह से आप स्वयं को एक समय में एक मिनट के लिए प्रशिक्षित करते हैं। इस एक मिनट में यदि आपकी एकाग्रता तीव्र एवं गहन है तो आप दस मिनट के लायक ध्यान पा सकते हैं। रहस्य ध्यान की अवधि नहीं अपितु उसकी तीव्रता एवं गहनता है। एक समय में एक या दो मिनट का संकल्प लेते हुए श्वासों के बीच का अंतराल समाप्त करें और मंत्र के बीच का विराम हटा दें।

2– दूसरा तथ्य मैंने यह देखा है कि वास्तव में मंत्र और विचार साथ–साथ भी चलते हैं। मस्तिष्क की एक पर्त पर विचार चलता है और मंत्र मस्तिष्क की दूसरी पर्त पर स्पंदित होता है। सतह के स्तर पर लहरें किनारों से टकरा रही हैं, शोर उत्पन्न कर रही हैं,

लेकिन दस फिट नीचे पूर्ण शान्ति है। आपको अपना ध्यान सतह से हटा कर उस गहराई में ले जाना होगा। निरीक्षण के सिद्धांत का प्रयोग करें और जब आप गहराई पर ध्यान लगाएंगे तो सतह की लहरें धीरे–धीरे उठना बंद हो जाएंगी।

किसी भी नए स्तर पर लोगों को ऐसी बाधाएं आती हैं जो पहले कभी नहीं आई होती हैं। जब विचार शांत हो जाते हैं, तो बिम्ब उभरने लगते हैं। जब आप ज्ञान अवस्था से बाहर निकलने मे समर्थ हो जाते हैं और बिम्ब शान्त हो जाते हैं तो विशेष प्रकार के संवेग तथा मनोभाव उत्पन्न होने लगते हैं। कुछ लोग रोने लगते हैं तो कुछ हंसना शुरू कर देते हैं, कुछ नाराज महसूस करने लगते हैं तो कुछ डर जाते हैं, कुछ लोगों की काम भावना जागने लगती है। इनमें से हर एक से निबटने के लिए आपको गुरू के परामर्श की आवश्यकता पड़ सकती है, क्योंकि इस समय आप ऐसी अवस्था में होते हैं कि आप गलत दिशा में जा सकते हैं। जैसे कि कुछ लोग कहते हैं कि इस एक बिंदु पर पहुंच कर मैं डर गया और ध्यान से बाहर आ गया गुरू परंपरा में इन सभी प्रश्नों के उत्तर तथा इन सभी समस्याओं के समाधान होते हैं और एक सुयोग्य गुरू इन सभी अवस्थाओं में आपका मार्गदर्शन कर सकता है।

मानसिक जप की चौथी अवस्था

आपके ध्यान की चौथी अवस्था, यदि आप इसे प्राप्त कर सकें तो, शायद पांच मिनट मस्तिष्क की पूर्ण निश्चलता होनी चाहिए। अधिकतर लोग एक क्षण की भी पूर्ण निश्चलता नहीं प्राप्त कर पाते हैं। इस अवस्था में आप मौन के प्रकोष्ठ में प्रवेश करतें हैं और मस्तिष्क मानों स्फटिक की झील के समान हो जाता है, जिसमें एक तरंग तक नहीं होती है। और फिर उस मौन के अंदर से एक एकाकी तरंग उत्पन्न होती है, जो आपके मंत्र की तरंग होती है। लेकिन इसकी उच्च आवृति को बनाए रखिए, जहां मंत्र मात्र एक शब्द होता है और फिर शब्द भी नहीं रहता है, मात्र एक स्पंदन रह जाता है। तब लंबे मंत्र को करने में भी आपको अधिक समय नहीं लगता है। इस प्रकार से जप करने को एक बहुत सूक्ष्म तथा परिष्कृत कला समझा जाता है।

इस निश्चलता में अलग–अलग लोगों को अलग–अलग अनुभव होते हैं। मस्तिष्क को अनुभव होता है

वह एक विशाल मैदान, में है,
या व्यक्ति स्वयं को भूल जाता है,

या वह नहीं जान पाता है कि कितनी देर ध्यान में बैठा

कुछ लोग यह समझ रखते हैं कि उन्हें अंतिम शांति प्राप्त हो गई है, किन्तु यह निश्चलता चरम निश्चलता नहीं है। अभी तो बस लहरों ने किनारों पर टकराना बंद किया है। पर संस्कारों की अंतर्धारा अभी भी सक्रिय है। जैसे–जैसे स्थिरता आती है, हमारे अस्तित्व के सूक्ष्म भाग से अनुभव उठने लगते हैं। किसी को प्रकाश दिखाई देने लग सकता है, किन्तु सभी प्रकाश आध्यात्मिक नहीं होते हैं। यह प्राण का प्रकाश हो सकता है, शारीरिक उष्मा प्रकाश हो सकता है अथवा उससे भी कम महत्वपूर्ण कुछ हो सकता है।

चेतना के केंद्र

कुछ मामलों में प्रथम दीक्षा के समय ही गुरू मंत्र के अलग–अलग अक्षरों को चेतना के केंद्रों में केंद्रित कर के ध्यान करने के लिए कह सकता है। उदाहरण के लिए यदि किसी को नमः शिवाय मंत्र दिया गया हो तो उसे इस प्रकार से पांच केंद्रों पर स्मरण के लिए कहा जा सकता है

आरोही क्रम,निःश्वास	
न	मूलाधार
मः	नाभि
शि	हृदय
वा	कंठ
य	भौहें

अवरोही क्रम,श्वास

न	भौहें
मः	कंठ
शि	हृदय
वा	नाभि
य	मूलाधार

यह जितना मुश्किल और असंबद्ध लगता है, उतना होता नहीं है। श्वास अक्षरों को एकीकृत करके चक्रों को संयुक्त कर देती है।

फिर भी, अधिकतर मामलों में, कुछ महीनों या कुछ वर्षों में मंत्र के आत्मसात हो जाने के बाद, साधक के लिए चेतना का कोई विशेष केंद्र निर्धारित किया जा सकता है, जिसमें एक क्रमबद्ध व्यवस्था में उर्जा के पैटर्न तथा शक्तियों का अंतदर्शन होता है।

अथवा जब साधक की चेतना की तैयारी पूरी हो गई हो तो उसे कुंडलिनी के मार्ग की शिक्षा दी जा सकती है। आजकल बहुत से लोग कुंडलिनी के साथ खिलवाड़ करते हैं, परंतु बिना मंत्र दीक्षा तथा एकाग्रता के उचित मार्गदर्शन के यह व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है, क्योंकि यह मंत्र के रूप में ध्वनि की अभिव्यक्ति है,

जो कि उर्जा के प्रवाह को नियंत्रित करने में मदद करता है।

मस्तिष्क में मंत्र को परिष्कृत करने के बहुत से तरीके हैं। साधक की आध्यात्मिक प्रगति के प्रति निष्ठा तथा गुरू के साथ उसके संपर्क के अनुरूप उसे उनकी शिक्षा दी जाती है।

ध्यान का समय

ध्यान के लिए एक निश्चित समय तय करना ध्यान में सफलता का एक बड़ा रहस्य है। एक निश्चित समय। यह संकल्प का मामला है। ध्यान के अपने प्रतिदिन के निश्चित समय के अतिरिक्त दिनभर में जब भी संभव हो, आप जहां कहीं भी हों दो मिनट, पांच मिनट, यहां तक कि एकमिनट के लिए भी अगर संभव हो तो अपने मस्तिष्क को अपने मंत्र के साथ मिला लें। शास्त्रों में कहा गया है "मुमुक्षुणां सदा कालः स्त्रीणां कालश्च सर्वदा"। परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि आप ध्यान का अपना कोई निश्चित समय न रखें, अपितु इसका अर्थ तो यह है कि आप हर समय अपना ध्यान का समय बना लें। मनुष्य कुछ भी क्यों न कर रहा हो, मस्तिष्क में एक निश्चित स्तर का जप तो चलता ही रहना चाहिए।

स्वतः स्फूर्त मंत्र या मंत्र का स्वयं होना

जिन्हें योग परंपरा से मंत्र मिला है, उन्होंने यह अनुभव किया होगा कि मंत्र का सही तरीका मंत्र करना नहीं अपितु उसे होने देना सीखना है। बहुत बार व्यक्ति को मंत्र करना पड़ता है, जबकि कभी ऐसा भी होता है कि केवल मंत्र का आह्वाहन करना पड़ता है, और जप की प्रक्रिया स्वतः ही प्रारंभ हो जाती है। मंत्र को अपने आप उठने देना चाहिए तथा मस्तिष्क में उसे चलने देना चाहिए। बहुत बार यह भी जरूरी नहीं होता, मंत्र को आमंत्रित भी नहीं करना पड़ता है। व्यक्ति पाता है कि रात को नींद खुली और मंत्र चल रहा है, व्यक्ति बाथरूम में है और मंत्र चल रहा है, व्यक्ति जीवन साथी की बाहों में और पाता है कि मंत्र चल रहा है।

बस मंत्र को अपने अंदर सुनना सीख लें
और सुनने में डूब जाएं

योग परंपरा में मंत्र को बीज कहते हैं, एक बीज मस्तिष्क में बो दिया जाता है। यह गुरू के मस्तिष्क के एक छोटे से भाग को शिष्य के मस्तिष्क में बो देना है। अतः मंत्र की अपनी गतिविधि होती है। यहां तक कि यदि आप आज से छः वर्ष तक या दस वर्ष

तक भी अपना मंत्र न करें तो भी वह कहीं न कहीं तो आएगा ही। योग परंपरा में कहा जाता है कि आपको दिया गया मंत्र आपके साथ मृत्यु तक भी जाएगा। मृत्यु की कला के हमारे प्रशिक्षण में हम व्यक्तियों को उस दिन के लिए तैयार करते हैं जिस दिन उन्हें शरीर छोड़ना हो और मंत्र उस यात्रा में उनके साथ रहे।

पवित्रीकरण में प्रगति

संस्कार अचेतन मन में एकत्र पूर्व कर्मों के बिम्ब हैं। मंत्र संस्कारों के आवरण को भेदने के लिए है, वर्तमान संस्कारों को समाप्त करने तथा नए अवांछित संस्कारों के निर्माण को रोकने के लिए है।

अथवा पतंजलि के योग सूत्र की भाषा में कहें तो मंत्र क्लिष्ट वृत्तियों को उठने से रोकने के लिए, तथा एकमेव अक्लिष्ट वृत्ति को विकसित करने तथा बनाए रखने के लिए, है जिससे शुद्धि, बुद्धि, सिद्धि तथा मुक्ति प्राप्त हो सकें।

शुद्धि, पवित्रता;
बुद्धि, शुद्ध तथा सात्विक सचेतनता की जागृति;
सिद्धि, जप के उद्देश्य की पूर्णता;
तथा कृपा से और जब हमारे प्रयास परिपक्व हो जाएं तब **मुक्ति**

हमें संस्कारों के आवरण को; शरीर के पंच कोषों, प्राण, मन बुद्धि को; तीन शरीरों–स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर; बुद्धि के उस सर्वाधिक आंतरिक भाग को जिसके आगे मंत्र भी नहीं जाता, जहां 'मंत्र' छोडा जाता है; भेदना होगा।

माला का प्रयोग

व्यक्ति को अलग–अलग प्रकार के मंत्रों के लिए अलग–अलग प्रकार की मालाओं की आवश्यकता पड़ सकती है। उसे पहनने के लिए अलग तथा मंत्र करने के लिए अलग प्रकार की माला का प्रयोग करने का परामर्श दिया जा सकता है। यह सब गुरू–शिष्य के बीच की बात है।

बड़े दानों की माला से आपकी जप कि गति धीमी हो जाती है; जब तक आप बड़े से मनके को एक दिशा से दूसरी तक ले जाते हैं, दो सेकेण्ड बीत जाते हैं। बड़े मनको की माला पहनने के लिए ठीक है, किन्तु जप के लिए छोटे मनकों का प्रयोग करें जिनके बीच में गांठ पड़ी हो।

क्या आपको माला के प्रयोग की आवश्यकता है? जप के दो अलग–अलग पक्ष हैं। दोनों अभ्यासों के अपने अलग लाभ है। बहुधा व्यक्तिओं को एक निश्चित समय के लिए माला के साथ एक नियम बना कर उसका पालन करने की आवश्यकता पड़ती है; "मैं इतनी संख्या में जप करूंगा"। अपने अभ्यास में आप एक भाग माला के साथ करें, जिससे आप एक न्यूनतम नियम का पालन कर सकें,

एक आदत बन जाए, और तब माला एक ओर रख दें तथा मन के अंदर गहराई में जाते जाएं।

पुरश्चरण

मैं बहुधा दीक्षित व्यक्तियों को दीक्षा के तुरंत बाद पुरश्चरण का परामर्श देता हूँ। पुरश्चरण शब्द का अर्थ होता है, आगे बढ़ा हुआ एक कदम। इस शब्द का प्रयोग किसी विशेष नियम के अनुपालन के संदर्भ में किया जाता है। उदाहरण के लिए पुरश्चरण का प्रारम्भिक नियम किसी के लिए अपने मंत्र का माला के साथ 125000 जप हो सकता है। इतने मे मंत्र की आदत पड़ जाती है और वह आत्मसात हो जाता है। एक माला में लगने वाला समय जान कर आप अपने नित्य उपलब्ध समय के आधार पर आप यह निश्चित कर सकते हैं कि आपको बताई गई संख्या में जप करने में कितने दिन लगेंगे।

जब आप सवा लाख जप पूरा कर लें तो अपने गुरू से संपर्क करें, जो आपको परामर्श देंगे कि आपको पुनः उसी प्रकार वही प्रक्रिया दोहरानी है अथवा किसी और ढ़ंग से जप करना है। आपकी प्रगति की निश्चित अवस्था में आकर आपसे कहा जा सकता है

1–मंत्र के साथ श्वास की विशेष प्रक्रिया

2–ध्यान के लिए निर्धारित चक्र, और कभी–कभी इनके साथ

3–आंतरिक दर्शन, अथवा मानसिक कर्मकांड

वह आपको साधना के पांच स्तम्भों में से किसी के भी पालन का निर्देश दे सकते हैं, जो इसे प्रकार हैं

1–मौन

2–ब्रह्मचर्य

3–स्थिरता

4–उपवास

5–न्यूनाधिक मात्रा में निंद्रा पर विजय

इस प्रकार के निर्देश के लिए आप अपने गुरू के संपर्क में रहते हैं। हर वर्ष कुछ समय संसार से अलग रह कर स्वतंत्रतापूर्वक मंत्र के गहन अभ्यास के लिए निश्चित कर रखें।

मंत्र ध्यान में गहनता: कुछ अन्य पक्ष

मंत्र ध्यान में गहनता के कुछ अन्य पक्ष

जब शरीर थका हो तो मस्तिष्क भी निस्तेज हो जाता है, क्योंकि शरीर प्राण से शक्ति का अपना भाग खींच लेता है और जब प्राण निचली आवृत्ति में तथा दोषपूर्ण ढंग से संचरित होता है, तो मस्तिष्क का संचरण भी इसी प्रकार निचली आवृत्ति में तथा दोषपूर्ण हो जाता है। अतः यह अत्यंत आवश्यक है कि हर व्यक्ति विश्राम की अपनी साधना को विकसित करने में गहरी रूचि ले। विश्राम का अर्थ पर्याप्त सोना ही नहीं है, अपितु इसका अर्थ सचेतन विश्राम है, जैसा कि शवासन के अभ्यास में होता है, जो कि अंततः योगनिद्रा के अभ्यास में बदल जाता है। विश्राम करने का यह अर्थ भी है कि व्यक्ति सारे दिन के अपने व्यस्त कार्यक्रम में अपने मस्तिष्क को इस प्रकार शांत रहने के लिए प्रशिक्षित करे कि क्रिया-कलापों में उनके संपादन के लिए अपेक्षित ऊर्जा से अधिक ऊर्जा शरीर से न निकल जाए। मौन का अभ्यास भी अत्यधिक विश्रामपूर्ण होता है।

विश्राम अपने आप में पर्याप्त नहीं है। शारीरिक योग का अभ्यास प्राण को क्रियाशील बनाता है तथा प्राण के प्रवाह को संतुलित तथा सुसंगत करता है और

उसे उच्चतर स्पंदन की आवृत्तियों में बदलता है। प्राण को जब एक बार आप हठयोग के अभ्यास के द्वारा क्रियाशील कर दें तब आप शिथिलीकरण की प्रक्रिया करें तथा शवासन की अन्य क्रियाएं करें। तत्पश्चात दाहिने तथा बाएं दोनों स्वरों से प्रवाहित होने वाली ऊर्जा को और अधिक संतुलित करने के लिए नाड़ीशोधन का अभ्यास करें।

इसके अतिरिक्त जीवन की और भी बहुत सी दिशाओं में स्वयं को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता पड़ती है। सभी यम तथा नियम भावनात्मक शुद्धिकरण के लिए दिशानिर्देशक हैं। अन्यथा हमारी भावनाएं बेतरतीब विचारों को प्रकट करती हैं, मस्तिष्क को धीमा करती है तथा शरीर को थका देतीं हैं। भावनात्मक शुद्धिकरण अपने आप में एक अलग तथा समग्र साधना है, जो कि जप साधना के साथ चलती है। भावनात्मक शुद्धिकरण की साधना आत्म-निरीक्षण, आत्म-संस्कार, आत्म-शुद्धि तथा मनः-शुद्धि का जीवन पर्यन्त चलने वाला प्रयास है। भावनाएं ही वह बाधा हैं जहां फंस कर ध्यान की हमारी प्रगति रूक जाती हैं, लेकिन जितना अधिक जप आप करते हैं, धीरे-धीरे आपकी भावनाएं शुद्ध होती जाती हैं, तथा इसका विपरीत भी

होता है, जैसे-जैसे आपकी भावनाएं शुद्ध होती हैं, आपका जप बढ़ जाता है।

दीक्षा से पूर्व प्राप्त मंत्र

मंत्र दीक्षा के पूर्व अथवा पश्चात भारत में यह प्रश्न बहुधा पूछा जाता है, "मैं अपने पहले से प्राप्त मंत्रों का क्या करूं?" भारत में तथा पश्चिम में, दोनों ही जगहों में लोगों को बहुत से मंत्र ग्रहण करने की आदत होती है। पश्चिम में यह प्रयोगात्मक स्तर पर होता है, लोग इस मंत्र के साथ प्रयोग करना चाहते हैं या अथवा उस मंत्र के साथ, इस शिक्षक के साथ प्रयोग करना चाहते हैं या उस के साथ। भारत में लोग समझते हैं कि बहुत सी दीक्षाएं लेने से उनकी पवित्रता में वृद्धि होगी। दोनों प्रकार के लोगों को हमारा उत्तर है कि बहुत से मंत्र होना बहुत से पति या बहुत सी पत्नियां होने के समान है। मस्तिष्क विभाजित हो जाता है। जबकि मंत्र का उद्‌देश्य मस्तिष्क को एकाग्र करना है, बहुत से मंत्र करने से सहायता नहीं मिलती है। भारत में धार्मिक परंपरा के लोग बहुत ही कर्मकांडी होते है विस्तृत पूजाएं करते हैं। वे पूजाएं संस्कारों का हिस्सा होती हैं अतः उनमें बहुत से मंत्रों का पाठ होता है, बहुत सी प्रार्थनाएं होती हैं। ये सब बाह्य प्रक्रियाएं हैं बहुत से तांत्रिक ग्रंथों में क्रिया पाद तथा चर्या पाद के अतिरिक्त, जो

कि कर्मकांड के नियमों तथा दैनिक जीवन के नियमों से संबंधित अध्याय होते हैं, नियमों के आंतरिक पक्ष पर एक अध्याय योग पाद भी होता है। मंत्र के आंतरिक भाग या मंत्र जिस अभ्यास का हम यहां वर्णन कर रहे हैं, बहुत कम व्यक्ति उससे परिचित या उसके ज्ञाता होते हैं। अतः अधिकतर लोग स्वयं को सिर्फ बाहरी क्रियाओं से संतुष्ट कर लेते हैं। जिस प्रकार पश्चिम में ईसाई या यहूदी लोग प्रार्थनाग्रहों में बाह्य क्रियाकलापों, प्रार्थना तथा स्तोत्रों से संतुष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार भारत में भी मंदिरों में जाने वाले किया करते हैं। थोड़े से सांस्कृतिक वातावरण के अंतर के बावजूद विचार एक ही है।

भारत में मंत्रों का लेना, देना या अभ्यास बहुत से तरीकों से होता है:

1-जैसा कि पहले भी कहा है, ये बाहरी उपचार का भाग होते हैं। बहुधा पुजारी मंत्र दे देते हैं। जैसे द्विज जातियों में एक निश्चित आयु पर पुरोहित द्वारा गायत्री मंत्र दिया जाता है। लोग जहां तक संभव हो सकता है जीवन भर गायत्री मंत्र का जाप करते हैं।

2-बहुत बार लोग, मैंने यह प्रवासी भारतीय समाज में भी देखा है, किसी आध्यात्मिक जीवन के पक्ष में

आरोहण करने का निश्चय कर लेते हैं तथा किसी पुरोहित या ज्योतिषी के पास जाकर मंत्र ग्रहण कर लेते हैं। पुरोहित या ज्योतिषी मंत्र का चयन किस प्रकार करते हैं? इसके बहुत से तरीके हैं।

क– इसका एक तरीका अंक विज्ञान का प्रयोग है। भारतीय अंक विज्ञान के अनुसार अंकों का गहरा संबंध वर्णमाला के अक्षरों के साथ होता है। यह परंपरा यहूदियों मे भी मिलती है जिसमे वर्णमाला के अक्षरों की अंकगणितीय व्याख्या के आधार पर हिब्रू बायबल का विश्लेषण किया जाता है। मंत्र का व्यक्ति के नाम या जन्मतिथि के साथ अंकगणितीय संबंध भी हो सकता है।

ख– वर्तमान पश्चिमी देशों से भिन्न, भारत मे ज्योतिष मात्र भविष्यवाणी का साधन नहीं है। लोग किसी भी ऐसे ज्योतिषी से परामर्श नहीं लेते हैं जो परिस्थितियों को बदलने के लिए कोई अग्रिम उपाय नहीं बताता है, क्योंकि ज्योतिषी की हर भविष्यवाणी के साथ यह संकेत भी होता है कि अमंगलकारी शक्तियों का स्थान परिवर्तन भी हो सकता है। अतः यदि अमुक नक्षत्र अशुभ स्थान पर

हैं, जो ज्योतिषी आपको जरूर यह भी बताएगा कि मंत्र से उसे प्रसन्न किया जा सकता है, तथा वह यह भी बताएगा कि उसके साथ क्या अन्य कर्मकांड या मंत्र, पूजा – पाठ करना उचित होगा। व्यक्ति की राशि के आध ार पर भी यह निर्धारित होता है कि इसके जीवन से नक्षत्रों का दुष्प्रभाव हटाने के लिए या लाभप्रद नक्षत्रों के प्रभाव को बढ़ाने के लिए किस शक्ति को लाने की आवश्यकता है।

ग– बहुधा पुरोहित, जो कि किसी एक विशेष धार्मिक संप्रदाय से जुड़े हुए नहीं होते हैं, मंत्र लेने वाले से उसके इष्ट देवता के विषय में पूछते हैं। ऐसे में कुछ लोग अपने कुल देवता का नाम बताते हैं तो कुछ अपने सर्वाधिक प्रिय देवता का नाम बता देते हैं। इसके आधार पर भी मंत्र का चयन होता है।

3– कुछ मंत्र कुल परंपरा से चले आ रहे होते हैं। परिवारों में वंशानुगत रूप से पिता द्वारा पुत्र को या माँ द्वारा बेटी को यह मंत्र दिए जाते हैं। इसी प्रकार कभी–कभी बहू को सास के द्वारा भी मंत्र मिलता है। क्योंकि जिस प्रकार परंपरा से पिता के सातत्य में पुत्र

का स्थान होता है, उसी प्रकार माँ के सातत्य में पुत्रवधू का स्थान माना जाता है, पुत्री अपन पति के परिवार के सातत्य मे होती है, पिता के नहीं।

4– कुछ सम्प्रदायिक मंत्र भी होते हैं। ये बहुत से धार्मिक संप्रदायों से संबधित होते हैं, जिनमें सभी को अलग–अलग मंत्र दिए जाते हैं। रामानुज की कथा में इसका उल्लेख है, जिन्होंने नांबी से मंत्र लिया था। मंत्र देने वाले आचार्य ने उनसे कहा, "मंत्र को गुप्त रखना होगा," परंतु रामानुज छत पर चढ़ गए और सारे संसार को चिल्ला कर मंत्र बता दिया, "उँ नमो भगवते वासुदेवाय। मैंने ऐसी महान निधि प्राप्त की है।" आचार्य ने कहा, "मैंने तुमसे कहा था कि इसे गुप्त रखना चाहिए।" रामानुज ने उत्तर दिया, "मैं इस निधि को प्राप्त करके इतना अधिक प्रसन्न हो गया कि मैं इसे हर एक के साथ बँटाना चाहता हूँ।" अतः तब से उस संप्रदाय में सबका एक ही मंत्र होता है। अब जैसे किसी व्यक्ति को किसी संप्रदाय का मंत्र मिला है और पूजा आदि में भी वह बहुत से मंत्रों का पाठ करता है। ये मंत्र योग परंपरा में प्राप्त मंत्रों से किस प्रकार भिन्न हैं? इन सभी परंपराओं में भी निश्चय ही एक आध्यात्मिक शक्ति विद्यमान होती है। इसमें शंका का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। आध्यात्मिक प्रभाव के संदर्भ में इनमें कोई अंतर नहीं है, सिवाय इसके कि

इसका केंद्र उस देवता का रूप होता है, मंत्र के द्वारा व्यक्ति का मानसिक तथा आध्यात्मिक गठन होता है।

योग परंपरा में, सर्वप्रथम, दीक्षा देने का अधिकारी व्यक्ति मंत्र का चुनाव करने के लिए एक अंतर्ज्ञानात्मक प्रक्रिया का प्रयोग करता है। जो लोग मंत्र दीक्षा प्रदान करने के लिए अधिकृत किए जाते हैं, उन्हें ऐसी मानसिक अवस्था में आने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है, जहां तक संभव हो मानसिक संघर्ष को कम करना है। योग परंपरा से प्राप्त मंत्र कर्मकांड के लिए नहीं होता है। यह केवल मानसिक रूप से आत्मसात करने के लिए होता है। यह पंच कोषों तथा तीन शरीरों के आवरणों को भेदने के लिए होता है, जब तक कि मंत्र उस अवस्था में नहीं पहुच जाता है, जहां शिवसूत्र के अनुसार "संपूर्ण मस्तिष्क ही मंत्र बन जाता है"। इसके भी आगे मन अमनस्कयोग की अवस्था में पहुंच जाता है। तब न केवल मंत्र ही छूट जाता है अपितु मस्तिष्क ही छूट जाता है।

मंत्र दीक्षा एवं अभ्यास

अब पुनः उसी प्रश्न पर आते हैं, "जो मंत्र मैंने पहले प्राप्त किए हैं, उनका मैं क्या करूं?" जैसा कि मैंने कहा, योग परंपरा से आपको जो मंत्र प्राप्त हुआ है, वह केवल आंतरिक आत्मसातीकरण के लिए है। यदि

आप किसी संप्रदाय या कुल की परंपरा के मंत्र का प्रयोग करते हैं तो उसे करते रहिए, उस देवता की पूजा–अर्चना लिए वह मंत्र उपयुक्त है। इसमें कोई समस्या नहीं है। इस प्रकार के मंत्रों का क्या करना है? उन्हें आदर देने के लिए उनका थोड़ा जप करना है। आप कोई सुंदर आभूषण देखते हैं और आप उसे खरीद लेते हैं। लेकिन आप अपने पुराने आभूषण फेंक तो नहीं देते हैं। आप उन्हें नए आभूषणों के साथ ही रखते हैं। परंतु यह मंत्र आपके नियमित ध्यान के लिए नहीं हैं, इनका उद्देश्य अलग है। ये मंत्र आपको आपके संप्रदाय के साथ जोड़े रखने के लिए हैं, आपकी कुल परंपरा को बनाए रखने के लिए है, बाहरी पूजा तथा अर्चना के लिए भी ये ठीक हैं।

अतः योग दीक्षा से प्राप्त गुरू मंत्र के अतिरिक्त यदि आपके पास अन्य मंत्र भी हैं, अथवा वे मंत्र जो आपके गुरू ने विशेष साधना के लिए आपको दिए हैं, हर बार जब भी आप ध्यान के लिए बैठें, अपने सभी मंत्रों को स्मरण करने तथा सम्मान देने के लिए उन्हें एक या तीन बार दोहरा लें। यहां तक कि आप अपने ध्यान का समापन भी उन मंत्रों के दुहराव के साथ कर सकते हैं। परंतु अपने ध्यान के मुख्य भाग में तथा दिन भर अपने गुरू मंत्र के साथ ही रहें। योग परंपरा में आपको

इस संदर्भ में क्या करना होता है, इन दोनों बातों में अंतर करना सीखना होता है। और आपको यह भी सीखना चाहिए कि ध्यान के अभ्यास में मंत्र का क्या स्थान है।

लंबे मंत्रों का जप

बहुधा जब व्यक्ति के पास उपलब्ध समय सीमित होता है, ऐसे समय में लंबे मंत्रों को प्रभावशाली तरीके से करने की मस्तिष्क की क्षमता के विषय में प्रश्न उठता है। बहुत से लोगों को मृत्युंजय मंत्र की एक माला करने में लगभग आधा घंटा समय लग जाता है। इस गति से यदि वे 1,25,000 मंत्र के पुरश्चरण करने का संकल्प करें तो उन्हें वर्षों का समय लग जाएगा।

अर्ध मात्रा (मोरा) का सिद्धांत

इसके लिए अर्ध मात्रा का सिद्धांत लगाना पड़ता है। एक मोरा समय की उतनी मात्रा है, जितना हम एक स्वर के उच्चारण में लगाते हैं। इससे आधे समय में इस स्वर का उच्चारण करने का अभ्यास करना पड़ता है। यहां पर हम न तो सवाक् बोलने की बात कर रहे हैं, न मुंह से बुदबुदाने की और न ही हम होंठ, गले या स्वर यंत्र की सहायता से मन ही मन दुहराने की बात कर रहे हैं। कुछ लोग मौन जप करते समय

भी इसे वाक् अंगों, कंठ, स्वरयंत्र अथवा क्रियाशील जीभ, यहां तक कि बंद होंठों से आने देते हैं। मुंह से तीव्र गति से मंत्र करने से केवल तनाव बढ़ेगा और ध्यान को प्रगाढ़ करने का उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा।

अर्ध मात्रा का सिद्धांत समझने के लिए, जैसा कि पहले भी कहा है, मस्तिष्क की प्रकृति को समझना होगा। इस विषय में मुख्य ध्यान देने वाली बात यह है कि यह केवल एक पर्त में नहीं होता है। इसकी कई पर्तें होती हैं, जो अलग–अलग आवृत्तियों तथा अलग–अलग ऊर्जा क्षेत्रों में स्पंदित होती रहती हैं और यह ऊर्जा क्षेत्र मस्तिष्क की गहरी पर्तों में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता जाता है। इन गहन पर्तों में मस्तिष्क के स्पंदन की आवृत्ति उच्च होती जाती है। और इस प्रकार मंत्र के आवर्तन का समय कम होता जाता है। तंत्र में बताया जाता है कि इस प्रकार मंत्र को नौगुना तक संस्कारित किया जा सकता है, अस्तु :

1/2
1/4
1/8
1/16
1/32
1/64

1/128
1/256
1/512

अर्थात, मंत्र की गति 512 गुनी तक हो सकती है।

यहां तक कि प्राण शक्ति तथा चेतना के सूक्ष्म बिंदु तथा सहस्रार चक्र में, जो कि सहस्र रश्मियों वाला उच्चतम केंद्र है, उस बिंदु में भी नौ स्तर हैं। यह सब अर्ध मात्रा की व्यवस्था के अंग हैं। एक छोटे स्वर "नहीं" के मानसिक स्मरण में लगने वाले समय एक मोरा से प्रारम्भ करके फिर उसे आधा करते जाते हैं, फिर उसका आधा, उसका आधा करते हुए उच्च आवृत्तियों के स्पंदन की ओर बढ़ते जाते हैं।

मानसिक मौन संकल्प

जब आप ध्यान के लिए बैठें, मन में एक संकल्प उठने दें, मौन संकल्प, सस्वर किया गया एक निश्चय नहीं, अपितु एक पूर्णतः मौन संकल्प। एक संकल्प जो इतना शांत, सुनिश्चित तथा दृढ़ हो जैसा व्यक्ति किसी के प्रेम में पड़ते समय लेता है। बस अपने अंदर ऐसा ही कुछ अनुभव करें। ध्यान की प्रत्येक स्थिति में, प्रत्येक अवस्था में इस संकल्प को पुनः नया करें। संकल्प अगले कुछ घंटों के लिए नहीं अपितु अगले कुछ मिनटों के लिए करें। ऐसा न कहें कि "मैं होने

नहीं दूंगा", अपितु सौम्यतापूर्वक ऐसा सोचें "अगले मिनट मैं केवल अपनी श्वास के समान प्रवाह का अनुभव करूंगा, किसी अन्य बाहरी विचार को अंदर नहीं आने दूंगा"। जिस प्रकार हमने पहले श्वास की प्रक्रिया को एक मिनट के अभ्यास के द्वारा सीखा था, ठीक उसी प्रकार अभी एक मिनट तक किसी बाहरी विचार को अपने मन में न आने देने के मौन संकल्प का प्रयास कर के देखिए।

यह एक मिनट कैसा था? अब अपने मन मे संकल्प कीजिए कि अगले एक मिनट तक आपके मन मे आपके मंत्र के अतिरिक्त कोई बाहरी विचार नहीं उठेगा। मंत्र एक विचार तरंग की तरह स्वयं को दुहराता हुआ आएगा, एक विचार तरंग के समान जिसमें अगले एक मिनट तक कोई बाहरी विचार नहीं आएगा। आप अपने मंत्र की उपस्थिति के साथ अपने नथुनों में श्वास के प्रवाह को अनुभव करेंगे।

अब मन की इस अवसथा को बनाए रखते हुए दो बार गायत्री मंत्र दुहराने का संकल्प लें। एक मिनट के संकल्प के समय अपने मन की जो अवस्था थी, उसे ही बनाए रखते हुए संकल्प लें कि इस विचार तरंग, जिसका नाम गायत्री मंत्र है, की इन दो आवृत्तियों के दौरान कोई भी बाहरी व्यवधान उत्पन्न

करने वाला विचार नहीं आएगा। अब शुरू करें। इस प्रक्रिया में आपको एक मिनट लगा। इस एक मिनट में योगी इक्कीस या उससे भी अधिक बार गायत्री कर सकते हैं, क्योंकि वह मन की गहराई में जाकर उच्चतर आवृत्तियों में पहुंच जाते हैं।

अब शब्दों को श्वास के साथ सम रखते हुए लंबे मंत्रों को करने का अभ्यास करें। ऐसा करते समय मंत्र को कई श्वासों में विभाजित कर लें। मंत्र के एक खंड "ॐ भूर्भुवः स्वः" को लें और देखें कि इसमें कितना समय लगा। प्रारम्भिक अभ्यास के लिए देखें कि एक प्रश्वास में यह खंड कितनी बार किया जा सकता है। इसी प्रकार आप दूसरे खंड "तत्सवितुर्वरेण्यं" तथा तीसरे खंड "भर्गोदेवस्य धीमही" तथा चौथे खंड "धियो यो नः प्रचोदयात्" को भी करने का प्रयास करें। जिस प्रकार का प्रयोग हमने पहले छोटे मंत्र के साथ किया था, उसी प्रकार का प्रयास, किसी भी बाहरी विचार को अंदर न आने देने के प्रयास को करने का संकल्प, एक–एक खंड के साथ करें। यह बाहरी विचार ही होते हैं, जो न केवल आपको निचली आवृत्तियों में अथवा मन के निचले स्तर पर ले आते हैं, अपितु मंत्र जाप के बीच आकर जप की गति को भी धीमा कर देते हैं। अतः छोटे अंतरालों के लिए किए गए संकल्पों के द्वारा इन व्यवधानों को निकाल देने से सहायता

मिलती है। बार–बार उस अनुभव को याद करिए जब आप कुछ समय के लिए उच्चतर आवृत्ति की अवस्था में गए थे। धीरे–धीरे आप संकल्प के समय को दो मिनट या उससे अधिक समय के लिए बढ़ा सकेंगे।

पूरे मंत्र की एक इकाई के समान आवृत्ति

अब पूर्णतः शिथिल हो जाएँ। श्वास को सम होने दें। अपने मंत्र को मन में आने दें, किंतु शब्दशः अथवा अक्षरशः नहीं। पूरा मंत्र एक इकाई के समान इस प्रकार आए मानो आपका मन स्वच्छ आकाश है और मंत्र उसमें कौंधने वाला प्रकाश है। अब गायत्री मंत्र के पहले भाग को इसी प्रकार अपनी चेतना में कौंधने दें। यही प्रक्रिया दूसरे और तीसरे भाग के साथ तथा फिर चौथे भाग के साथ दुहराएं। पूरा खंड एक इकाई के समान आने दें।

अब पहले और दूसरे भाग को एक साथ आने दें।

तीसरा और चौथा खंड विचारों की एक ही लहर के समान एक साथ कौंधे। इसी मनः स्थिति को बनाए रखिए।

अब संपूर्ण मंत्र को आने दीजिए। कुछ समय के पश्चात आपके अभ्यास में सुधार आएगा, क्योंकि आपका मन स्वयं ही अपनी उच्चतर आवृत्तियों में प्रविष्ट करना सीख जाएगा।

मन के द्वारा मन का निरीक्षण

ध्यान को गहन करने तथा साथ ही लंबे मंत्रों को जपते रहने का एक और रहस्य है। मन का निरीक्षण करना। मन को मन का निरीक्षण करने दीजिए। मंत्र की उपस्थिति का निरीक्षण करिए या उसे देखिए। मन का वह भाग जो कि विचार तरंगों का अनुभव करने में लगा है वह मन का एक छोटा सा खंड है। शेष भाग इधर उधर भटकता रहता है। इस शेष मन को उसके निरीक्षण में लगा देना चाहिए और धीरे–धीरे कर्ता और उसे देखने वाला मन, दोनो एक हो जाएंगे। जिन लोगों को किसी चक्र की दीक्षा मिली है, उन्हें उस चक्र में स्पंदन का अनुभव होगा और वे चक्र में चेतना को लीन करना सीख जाएंगे। समर्पण करें और कृपा का लाभ उठाएं। पूर्ण निश्चलता एवं ज्ञान आपको केवल अपने प्रयास से नहीं मिल सकते हैं। आपका प्रयास तो केवल पात्र को शुद्ध कर सकता है। अपने मन प्राण और शरीर को समर्पित कर दें जिससे गुरु की सत्ता आप में प्रविष्ट हो सके और गुरू की चेतना आपकी चेतना को स्पर्श कर सके,

अपने चित्त को उसका ध्यान का आसन बना दें जिससे वह वहां पर ध्यानस्थ हो सके।

ऐसा भी हो सकता है कि आप केवल बताई गई विधि का पालन करके अपने प्रयास में सफल न हो सकें। अतः एक योग्य मार्गदर्शक की खोज करें, जो कि आपके अंदर तरंगों का संचार कर सके और आपके अंर्तस्तल के किसी द्वार को व्यक्तिगत मार्गदर्शन के द्वारा खोल सके।

जो प्रयोग हमने गायत्री मंत्र के साथ किया है, वही मृत्युंजय अथवा किसी अन्य लंबे मंत्र के साथ भी हो सकता है।

मंत्रः तीसरी अवस्था

'बिल्ली' शब्द का क्या अर्थ है? 'कुत्ता' शब्द का क्या अर्थ है? क्या शब्द एक भाषा से दूसरी भाषा में किया गया अनुवाद है? क्या शब्द का अर्थ अनुवाद तक सीमित होता है? क्या हिंदी में कहे गए मनुष्य तथा अंग्रेजी में कहे गए मैन का अर्थ एक ही होता है? एक शब्द किसी दूसरे शब्द का अर्थ मात्र नहीं होता है। शब्द किसी ओर इशारा करता है, किसी की ओर इंगित करता है। संस्कृत में किसी तत्व, वस्तु अथवा अवस्था को – चाहे वह मूर्त हो अथवा अमूर्त हो – पदार्थ कहते हैं। 'पदार्थ' शब्द के दो भाग हैं पद तथा अर्थ। अर्थात पद के अर्थ को जो इंगित करे वह पदार्थ है। 'पद' शब्द को कहते हैं। इस प्रकार हम कह सकते है कि शब्द का अर्थ वह कोई भी वस्तु है जिसकी ओर शब्द इंगित करता है, चाहे वह मूर्त हो अथवा अमूर्त हो। अब, एक शब्द है दरी। इसका क्या अर्थ है? इस शब्द का अर्थ दरी की ओर मौन इशारा है, और अनुभव के द्वारा आप जो कुछ भी वहां पाएंगे, वही दरी शब्द का अर्थ है। जिस किसी भी अनुभव की ओर एक शब्द इंगित करता है – चाहे वह मूर्त हो अथवा अमूर्त हो – शब्द उसी अनुभव के विषय में सूचित कर रहा होता है। और इसी लिए अर्थ भी मूर्त अथवा अमूर्त हो सकता है। अतः आपका मंत्र आपको जिस भी अनुभव की ओर ले जाता है, वह अनुभव ही उसका अर्थ है। एक और तथ्य, जिससे इस संदर्भ में हमे परिचित तथा अभ्यस्त होना होगा, वह यह है कि एक शब्द के अर्थ के भी कई स्तर हो सकते हैं। यह उसी प्रकार है जिस प्रकार किसी भी मूर्त अथवा अमूर्त पदार्थ का कई स्तरों पर अनुभव होता है।

किसी पदार्थ के बहुस्तरीय अनुभव से क्या तात्पर्य हो सकता है? हम एक माइक्रोफोन का उदाहरण लेंगे। अलग–अलग पृष्ठभूमि वाले के लिए किस प्रकार

इसका अनुभव अलग–अलग हो सकता है। एक चित्रकला अथवा ज्यामिती से संबंध रखने वाले व्यक्ति के लिए, जिसके लिए आकृति तथा प्रारूप का महत्व है, यह एक बेलनाकार आकृति है। एक इलेक्ट्रानिक के विशेषज्ञ के लिए यह एक विशेष संयंत्र के साथ जुड़ी हुई चुंबकीय डिस्क है जो विद्युत तरंगो को ध्वनि में बदल कर के ध्वनि का विस्तार करती है। एक धातु विज्ञानी के लिए यह विभिन्न धातुओं का संमिश्रण है, एक भौतिक विज्ञानी के लिए यह एक ऊर्जा क्षेत्र है। लेकिन एक वक्ता के लिए तो यह मात्र एक माइक्रोफोन है।

अतः एक ही वस्तु के बहुस्तरीय कार्य हो सकते हैं तथा अलग–अलग लोगों को उससे बहुस्तरीय अनुभव हो सकते हैं। एक दर्जी किसी कमीज को ठीक उसी दृष्टि से नहीं देख सकता है, जिस दृष्टि से एक होने वाला वर उसे पहनने के लिए खरीदते समय देखेगा। एक ही वस्तु से हर एक व्यक्ति को अलग अनुभव होता है। यही नहीं एक ही व्यक्ति एक ही वस्तु के प्रति अलग – अलग तरह से अनुभव करता है। एक महिला एक पोशाक खरीदती है। फिर वह उसे अपने नाप का बनाने के लिए उसकी सिलाइयां उधेड़ देती है, उसे काट देती है, फिर से उसमे सिलाई लगाती है। तब जब वह उसे किसी उत्सव मे पहनती है तो

उसका अनुभव उस पोशाक के प्रति वही नहीं रहता है जो उसे सुधारते समय रहा था। उसे दो अलग–अलग अनुभव हुए किंतु पोशाक वही थी। जैसे–जैसे हम मूर्त से अमूर्त की ओर बढ़ते हैं, यह अनुभवजन्य भिन्नता बढ़ती जाती है। यही अनुभव अधिक परिष्कृत, शक्तिशाली, ऊर्जात्मक तथा व्यापक हो जाता है क्योंकि सृष्टि का एक नियम है कि सूक्ष्म निर्धारक सदा स्थूल से अधिक शक्तिशाली होते हैं।

इसी प्रकार मस्तिष्क में मंत्र के अनुभव की मात्रा बढती है तथा अनुभव में परिष्कार बढ़ता है, तो उसका प्रभाव अधिक व्यापक, होता जाता है तथा उसके सूक्ष्म अर्थ और अधिक प्रकट होते जाते हैं। उदाहरण के लिए एक साधारण मंत्र 'सोऽहं को लीजिए। इसका अर्थ है "मैं वह हूं"। अब यह 'वह' क्या है? हम सब हमेशा इस 'वह' के पीछे भागते रहते हैं, जो हमेशा ही बहुत दूर होता है – 'वह' जो वहां दूर है – 'वह' जो पीछे रह गया है – 'वह' जो भविष्य में आएगा – 'वह' जो पड़ोसी के आंगन में है – 'वह' जो किसी के पीछे है – 'वह' जो दूसरा है, दूर है। इसे ही तो दूर के ढ़ोल सुहावने कहते हैं। आप ढ़ोल की आवाज सुनते हैं, आपके कान सतर्क हो जाते हैं और आप उस 'वह' के पीछे भागने लगते हैं। सारे जीवन आप उस 'वह' के पीछे भागते रहते हैं – जो दूर

है, जो हम में नहीं है, जो हम नहीं हैं, जो हमारे पास नहीं है या हम समझते हैं कि हमारे पास नहीं है। ध्यान का अनुभव एकात्मता का अनुभव है। वास्तव में 'सोऽहं' का प्राकट्य अत्यंत प्राचीन है, लगभग तीन से चार हजार वर्ष पूर्व। इसका अर्थ है, 'मैं वह हूं', 'वह' अर्थात सूर्य में प्रकाशित होने वाली दीप्ति। मेरी सारी खोज मेरे स्व की परिपूर्णता की खोज थी। मेरी सभी लालसाओं में स्व के ज्ञान की लालसा छुपी थी। मैं वह हूं जिस वस्तु को मैं अपने से बहुत दूर ढूंढता रहा हूँ, जिसे मैं दूर की वस्तुओं में ढूंढ़ता रहा हूं और सुदूर समय में ढूंढ़ता रहा हूं। वह जिसे मैं बहुत दूर समझता रहा और वह मेरे ही अंदर थी।

मैं नहीं जानता यह सच है अथवा नहीं, प्राणिशास्त्री इससे सहमत होंगे अथवा नहीं लेकिन हिमालय पर्वत में रहने वाले कस्तूरी मृग की एक उपमा दी जाती है, जिसकी नाभि में छिपी हुई कस्तूरी की खुशबू उसे पागल कर देती है। वह उस सुगंध के स्रोत को ढूंढ़ने के प्रयास में पागल होकर भागता है। वह चारों ओर उसे ढूंढ़ता हुआ हरेक वस्तु को सूंघता है कि वह सुगंध कहां से आ रही है। मैं नही जानता यह सत्य है अथवा नहीं, किंतु यह उपमा मैंने प्राचीन दर्शन के ग्रंथों में पढ़ी थी। यह भी 'सोऽहं' का एक अर्थ है:

मैं वह हूं, मैं ही सूर्य की दीप्ति हूं, मैं वह सुदूर वस्तु हूं।

लेकिन जब हम 'सोऽहं' का निरंतर जप करते हैं तो वह हम्सो बन जाता है। अतः योग के कुछ संप्रदायों में इसे 'हम्सो' मंत्र भी कहा गया है। श्वेत पंखों वाला हंस पवित्र तथा लंबी–लंबी स्वतंत्र उड़ाने भरने वाला पक्षी होता है। हंसा शब्द सूर्य का भी पर्यायवाची है। मैं सूर्य का अंश हूं और सत्ता हूं, सूर्य के समान दैदीप्यमान हूं। अथवा यह केवल श्वास की ध्वनि है, और हंस के पंख दाहिना तथा बायां नथुना है। अतः जैसे–जैसे आप प्रतीक के अर्थ को अपने व्यक्तिगत अनुभव से सुलझाते जाते हैं, शब्द का अर्थ बदलता जाता है।

मैं इस शब्द 'सोऽहं' के अर्थ पर बिना रूके धारा प्रवाहबोल सकता हूं, इसी प्रकार आपके मंत्र के साथ है। प्रत्येक अक्षर प्रकाश की एक किरण का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक अक्षर आपके अंदर प्रकाशित चेतना के सूर्य की एक किरण का प्रतीक है। प्रत्येक किरण आपके अंदर उपयुक्त ऊर्जा की एक लहर उत्पन्न करती है, और जो कि संकेंद्रित किए जाने पर आपके द्वारा बाहर को विकीर्णित ऊर्जा को अंदर लाने में सहायता करती है। कुछ अवसरों पर हम संवेगों के

अतिरिक्त बहाव में अपनी ऊर्जा को छितरा देते हैं, काम का अतिरिक्त प्रवाह जो कि हमें असहाय बना देता है; तार्किकता का अतिरिक्त प्रवाह, जिसके कारण हम मानवीय संवेदनाओं से वचित रह जाते हैं; शुद्ध गतिक ऊर्जा का अतिरिक्त प्रवाह जो हमें बिना किसी रचनात्मकता के हाथ पैर हिलाने पर बाध्य कर देता है, क्योंकि हमें शिथिल होना नहीं आता है और हमें अपनी ऊर्जा को – जो कि हमें शांत बनाएगी – अंदर की ओर समेटना नहीं आता है। और हम समझते हैं कि जितने अधिक हम गतिशील हैं, उतने ही अधिक ऊर्जावान भी हैं – यथार्थ में तो हम उतने अधिक क्लांत होते है। जैसा कि भगवद्गीता में कहा गया है या सेंट टेरेसा के शब्दों में कहें तो जिस प्रकार एक कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है उसी तरह प्रार्थना के समय आत्मा अपनी सभी इंद्रियों को अंदर समेट लेती हैं और इस प्रकार अंदर की ओर सिमट रही ऊर्जा का केंद्र मंत्र बन जाता है। इस प्रकार मंत्र आपकी ऊर्जा तथा चेतना शक्ति का एक शांत किंतु शक्तिशाली क्षेत्र निर्मित करता हैं। यह बलात् लादी गई स्थिरता नहीं है। यह स्वयं को बाध्य करना नहीं है। यह तो आपके ऊर्जा क्षेत्र का विकास करना है, जिसे आप अपनी स्वतंत्र इच्छा का प्रयोग करके प्रवाहित कर सकते हैं न कि आपको विवश कर देने

वाली सामान्य उत्तेजनाओं, प्रतिक्रियाओ तथा बाध्यताओं के द्वारा।

अब प्रश्न यह है कि किस प्रकार आप अपने मंत्र को परिष्कृत करें कि यह आपके अंतर्मुखी होने की प्रेरणा का माध्यम बने। प्रारम्भ आप केवल साधारण जप से करें। प्रारम्भ में जप मंत्र का दुहराव है। परंतु धीरे–धीरे हमें शब्द को मानसिक स्पंदन में बदलना होता है जिससे शब्द को शब्द के रूप में नहीं जाना जा सकता हो। इस अवस्था तक पहुंचने में समय लगता है। और निश्चय ही किसी भी अन्य संबंध के समान मंत्र के साथ संबंध बनाते हुए भी आप जितना अधिक प्रयास उस संबंध को दृढ़ बनाने के लिए करेंगे, उतना ही अधिक बदले में पाएंगे।

कभी – कभी लोग पूछतें हैं कि उन्हें कब तक ध्यान करना होगा। और मैं पूछता हूं कि आप कब तक हर रात सोते रहने की सोचते हैं अथवा आप रोज कब तक खाते रहेंगे अथवा आप कब तक रोज दांत साफ करते रहेंगे और नहाते रहेंगे। यह भी कुछ ऐसा ही है जो सतत्, नियमित तथा नवीन है जो आप अपने में जोड़ रहे हैं। यदि आप पूरी गंभीरता के साथ सप्ताह में एक बार भी ध्यान के सत्र में उपस्थित हो रहे हैं तो जब तक आप ऐसा कर रहे हैं तब तक

आप इसके लाभ को भले ही नहीं समझें, लेकिन जब आप सत्र में उपस्थित नहीं हो पाएंगे तब आप इसके महत्व तथा लाभ को समझेंगे। ध्यान के क्षेत्र में आपको अधिक विचार इस बात पर नहीं करना है कि आप ध्यान की कितनी उन्नत तकनीक का प्रयोग कर रहे हैं, अपितु इस बात पर करना चाहिए कि अपनी तकनीक में आप कितनी उन्नति कर रहे हैं। नवीन तकनीकों के प्रति जिज्ञासा मनुष्य के लिए स्वाभाविक है किंतु साथ ही अनुशासन का अर्थ है कि व्यक्ति अपने अभ्यास में सतत् लगा रहे।

अब हम मंत्र को परिष्कृत करने के विषय पर चर्चा करेंगे। उदाहरण के लिए हम एक अक्षर, एक ध्वनि, जो कि सभी वर्णमालाओं का प्रथम अक्षर है, लेते हैं, जो 'अ' है। अब केवल 'अ' का उच्चारण करें। मेरे ऐसा कहते ही आपने यह ध्वनि बिना किसी प्रकार के आत्म निरीक्षण के केवल अभ्यासवश निकाली। यह एक प्रतिक्रिया के समान था। लेकिन इस 'अ' के उच्चारण में कहीं गहराई में आपकी स्वतंत्र इच्छा का प्रयोग था, स्वतंत्र इच्छा जो कि दिन के प्रत्येक क्षणांश में कुछ कहने या न कहने, कुछ करने या न करने का विकल्प देती है। यह इच्छा सचेतन है, सोची समझी हुई है। यह आपके जीवन तथा गतिविधियों का केंद्र है, तथा आपकी चेतना का केंद्र है।

कहीं न कहीं यह स्वतंत्र इच्छा करती है, "ठीक है, यह मेरा निर्णय है, इसे कहने या न कहने का मेरे पास विकल्प है। इस क्षण में मेरा चुनाव 'अ' कहने का है।"

अतः आपकी बुद्धि का वह भाग जो कि विभेद करता है, वह यह निर्णय करता है कि मस्तिष्क से स्पदनों की कौन सी श्रृंखला प्रारंभ की जाए। मस्तिष्क में एक सूक्ष्म स्पंदन होता है, जिसने अभी ध्वनि का रूप ध ारण नहीं किया है। परंतु यह मस्तिष्क के ऊर्जा क्षेत्र में एक अत्यंत सूक्ष्म स्पंदन है। यह स्पंदन मस्तिष्क में होता है। यह स्पंदन मस्तिष्क के उस क्षेत्र में जो उस प्रक्रिया से संबंधित होता है, भौतिक ऊर्जा को परिचालित करता है। इस प्रकार मस्तिष्क के एक क्षेत्र में छोटा सा विद्युत स्फुरण होता है। इस विद्युत स्फुरण का अधिकांश भाग व्यर्थ चला जाता है क्योंकि हमने अभी भी अपने मस्तिष्क का पूर्ण उपयोग करना नहीं सीखा है। अधिकतर विद्युत ऊर्जा बर्बाद हो जाती है। लेकिन उसमें से कुछ नाड़ियों में प्रवाहित होती है और एक संदेश उदर के एक विशेष क्षेत्र में पहुंचता है जहां कुछ वायु एकत्र है और मस्तिष्क से आने वाला एक स्नायु पेशी से कहता है, "क्या तुम अपने स्थान से थोड़ा सा खिसक कर थोड़ी सी हवा को उपर जाने दोगे?"

अतः थोड़ी सी वायु उपर को जाती है और उसी समय कंठ की मांसमेशियों को भी एक संदेश भेजा है। स्वर यंत्र कहता है, "मैंने नीचे थोड़ी सी वायु को छोड़ने के लिए एक संदेश भेजा है। अब वायु उपर को आ रही है उसको बाधित करना है। कंठ को कहीं से सिकोड़ो, कहीं से खोलो तथा जीभ दांत, मुंह, होठ सभी 'अ' का उच्चारण करने के लिए अपनी सही अवस्था में आ जाएं।" अतः उपर आने वाली वायु के पूर्वानुमान के आधार पर कंठ, स्वरयंत्र, जीभ, होंठ, दांत, जबड़ा सभी व्यवस्थित हो कर तैयार हो गए। और एक क्षणांश की कार्यवाई से 'अ' की ध्वनि उत्पन्न हुई। ऐसा बताया जाता है कि 'अ' कहने की इस प्रक्रिया में कई हजार स्नायविक प्रक्रियाएं हो जाती हैं। इन सूक्ष्म स्नायविक प्रक्रियाओं से परे कुछ और भी हो रहा है जो आपकी चेतना के स्तर पर हो रहा है, आपकी स्वतंत्र इच्छा के स्तर पर हो रहा है।

अब मैं चाहूंगा कि आप एक बार अपनी इच्छा की क्रिया से लेकर ध्वनि की उत्पत्ति तक की क्रिया का निरीक्षण करते हुए पुनः 'अ' कहें। इस बार पिछली बार की अपेक्षा ध्वनि अधिक कोमल होगी। इसी प्रक्रिया को इसी प्रकार से निरीक्षण करते हुए पुनः दुहराएं।

अब मुंह को बंद रखें तथा अपने मन मे 'अ' को दुहराएं। आवाज मस्तिष्क से आगे न जा पाए। अब आप पाएंगे कि जब आपका बोलना केवल मस्तिष्क के स्तर पर होता है तो यद्यपि 'अ' के बोलने में लगा हुआ समय तो कम है साथ ही उसका स्पंदन भी कहीं अधिक सूक्ष्म है। एक योगी ध्यान की गहनता में एक विचार – जैसे कि 'अ' – उसके छः सौवें भाग तक सूक्ष्मता में अनुभव करने में समर्थ होता है। उसका स्नायविक नियंत्रण इतना अधिक सूक्ष्म होता है। उसका समय का बोध इतना सूक्ष्म है। उसका दिक, काल, घटनाक्रम, कार्य कारण संबंध तथा अन्य सिद्धांत जो वस्तुओं को परिचालित करते हैं, उनमें परिवर्तन लाते है तथा उनका अनुभव करवाते हैं, इन सब के प्रति बोध अत्यंत सूक्ष्म होता है। जब आप अपने मंत्र का अभ्यास करते हैं तथा उसे और अधिक परिष्कृत करते है तो आप स्वयं अपने स्रोतों के और अधिक निकट पहुंचते है। आप इस बात का निरीक्षण करे कि किस प्रकार इच्छा, विचार को आगे बढ़ाती है। इसे उठता हुआ देखें। मन में मंत्र के दुहराव की प्रक्रिया को ध्यान से देखें।

अब आप कुछ समय मंत्र का अपनी श्वास के साथ अभ्यास करें। श्वास को जितना अधिक हो सके लंबा तथा सूक्ष्म करें। श्वास के परिष्कार तथा श्वास–प्रश्वास

के साथ–साथ मंत्र के प्रवाहित होने पर आप पाएंगे कि मस्तिष्क की गहराई तक जाना कितना अधिक आसान हो गया है। तब आप मानसिक जप को अपनाऐं। मंत्र को अपने मानस मे प्रकट होने दें इसे स्मरण बन जाने दें। लोग कहते हैं कि यह उनके मुंह में आ ही जाता है क्यों कि केवल मानसिक जप करना अत्यंत कठिन है। मुझे इसमें कोई परेशानी नहीं समझ में आती है। आप हर समय मौन विचारों मे खोए रहते हैं यदि आप अपने सभी विचारों को अपने मुँह में आने देंगे तो लोग समझेंगे कि आपका दिमाग खराब है। यदि आप ऐसा मौन स्मरण अपने सभी विचारों के साथ कर सकते हैं तो आप अपने मंत्र के साथ भी ऐसा कर सकते है। उदाहरण के लिए यदि आप रास्ते में जा रहे हों और अचानक आपको अपने किसी मित्र का स्मरण आ जाए तो आप जोर से आवाज निकाल कर उसका नाम नहीं पुकारते हैं। अन्यथा आपके आस पास के लोग आश्चर्य में पड़ जाएंगे। इसी प्रकार मंत्र भी दुहराव से अधिक स्मरण बन जाना चाहिए। कुछ ऐसा जो सदैव आपके मन के किसी कोने मे चलता रहता है। इसका स्मरण केवल ध्यान के समय न करें अपितु पूरे दिन ही करते रहें। स्मरण को परिष्कृत करें इसका अवलोकन करें। देखें कि यह किस प्रकार उठता है। देखें कि विचार किस प्रकार उठता है, इसकी क्या प्रक्रिया है। हर

बार जब आप मंत्र के स्मरण को दुहराते हैं, तो उसका अवलोकन करें। मंत्र का अवलोकन कर रहे अपने मन का अवलोकन करें। जब आप कुछ समय तक माला के साथ या माला के बिना मंत्र को परिष्कृत कर लें तो आप पुनः श्वास के साथ मंत्र को ले आएं।

बहुत से लोग मंत्र पर ध्यान लगाते हैं तो वे मंत्र के प्रत्येक अक्षर पर ध्यान देते हैं। प्रारम्भिक अभ्यास के लिए तो यह ठीक है, परंतु बाद में मंत्र उसी प्रकार हो जाना चाहिए जिस प्रकार यह आपके अवचेतन मन में है। यह एक परिपूर्ण इकाई है और इसके अक्षर मानों एक ही बीज से निकलने वाली शाखाएं हैं। बीज में वृक्ष का तना, शाखाएं, पत्तियां कहां होते हैं? वे सब उस एकल इकाई में समाए होते हैं। इसीलिए सबसे महत्वपूर्ण मंत्र बीज मंत्र के नाम से जाने जाते हैं मंत्र आपके मन में उसी प्रकार संचारित होना चाहिए जैसे कोई बीज को बार–बार उलट–पलट रहा हो। जब माला का मनका आपके हाथ में खिसकता हो तो वह केवल आपके मनस् क्षेत्र में बार–बार संचारित होते हुए मंत्र रूपी स्फटिक के मनके का अनुसरण करे। तब संपूर्ण मंत्र एक इकाई बन कर एक स्वतः स्फूर्त स्पंदन बन जाता है।

विशेष मंत्र

विशेष मंत्र

मंत्र का जप किसी उद्‌देश्य की पूर्ति की इच्छा से किया जा सकता है अथवा बिना किसी इच्छा के भी किया जाता है। इच्छापूर्ति के लिए किया गया मंत्र जप सकाम तथा बिना किसी इच्छा के किया गया मंत्र जप निष्काम कहलाता है। निष्काम मंत्र मुक्ति के उद्‌देश्य से शुद्धिकरण के हेतु किया जाता है। सकाम जप भी दो प्रकार से होता है – 1 किसी व्यक्तिगत इच्छा को पूरा करने के लिए, जैसे मैं अमीर हो सकूं या मेरे पति का स्वभाव बदल जाए। 2 इच्छा का सूक्ष्म प्रकार, जैसे मैं साधनामय जीवन व्यतीत करना चाहता हूं, किंतु मेरे मार्ग मे व्यावहारिक समस्याएं आ रही हैं। किसी की ऐसी समस्या भी हो सकती है "मैं साधना या सेवा का मार्ग नहीं अपना सकती हूं क्योंकि मेरे पति को मुझसे ईर्ष्या होती है"। ऐसी स्थिति में सुधार लाने के लिए अभ्यास तो पहली स्थिति के समान ही होगा किंतु उस चरम इच्छा के लिए होगा, जोकि निष्काम है। यहां पर सकाम इच्छा उस निष्काम लक्ष्य का पथ प्रशस्त करने के लिए है। यहां तक कि मुक्ति की इच्छा भी छोड़ी जा सकती है और केवल "गुरूप्रीत्यर्थम्" अर्थात गुरू की प्रसन्नता के लिए, उसकी कृपा प्राप्ति के लिए ही साधना की जा सकती है।

सकाम मंत्रो का विशेष उद्‌देश्य होता है, जैसे स्वास्थ्य लाभ, बीमारी या दुर्घटना से बचाव, दीर्घ जीवन, धन प्राप्ति आदि। इनका लक्ष्य कुछ भी हो सकता है, जैसे – मकान खरीदना, सत्ता प्राप्ति, संगठन की हालत में सुधार, मित्रता की प्राप्ति या शत्रुता की समाप्ति आदि।

सूक्ष्म उद्‌देश्य में भी अंतर होता है। व्यक्ति अनुष्ठान आत्मशुद्धि या मुक्ति के लिए कर सकता है, इच्छित परिणाम पाने के लिए कर सकता है अथवा मंत्र की सिद्धि प्राप्त करने के लिए कर सकता है। "मंत्र के अक्षरों को दस लाख से गुणा करके उसमें उसका बीस प्रतिशत जोड़ दिया जाए" यह सूत्र निश्चय ही मंत्र की सिद्धि को प्राप्त करने में प्रभावकारी हैं। ऐसा कहा जाता है कि सिद्धि प्राप्त होने के बाद व्यक्ति को मंत्र की अंतर्निहित शक्तियां मिल जाती हैं और मंत्र की कुछ आवृत्तियों के द्वारा ही वह स्वयं तथा अपने शिष्यों अथवा साधकों के लिए मनचाहे परिणाम प्राप्त कर सकता है।

बहुधा गुरू अपनी कृपा के द्वारा मंत्र की शक्ति को अपने शिष्य में स्थानांतरित कर देता है और इसके लिए शिष्य को बहुत बड़ी संख्या में मंत्र का जाप नहीं करना पड़ता है। मुझे 1972 का वह दिन याद आता

है जब मैं अपने गुरूदेव के साथ कार मे जा रहा था। मैंने उनसे कहा, "आपके महान शिष्य हिमालय में बैठ कर तपस्या में लीन हैं और एक मैं हूं जो अमेरिका के एक शहर से दूसरे में भागता फिर रहा हूं। मेरी आध्यात्मिक प्रगति कैसे होगी?" उन्होने अत्यन्त करूणापूर्ण स्वर में कहा," तुम्हें करने की क्या जरूरत है जब कि मैं तुम्हारे लिए यह सब पहले ही कर चुका हूं। मैंने पहले ही दस करोड़ गायत्री का फल तुम्हें दे दिया है। क्या तुमने इसका अनुभव नहीं किया?" "हां, अवश्य मैंने आपकी कृपा का अनुभव किया है" मैंने उत्तर दिया। मैंने इसी प्रकार की कहानियां अपने गुरूभाइयों के मुंह से भी सुनी हैं।

हमारी परंपरा में हम लोगों को विशेष अनुष्ठान करने को कहते हैं जिसमें एक निश्चित समय में एक निश्चित संख्या में जप करना होता है। सामान्य तौर पर यह संख्या सवा लाख तथा उसका पच्चीस प्रतिशत होती है। वस्तुतः यह संख्या प्रारम्भिक अभ्यासियों के लिए होती है। अभ्यस्त तथा अनुभवी साधकों के लिए यह नियम इस प्रकार होता हैः मंत्र के अक्षरों की गिनती करके उसका एक लाख गुना कर लेते हैं फिर उसका दस या बीस प्रतिशत और जोड़ लिया जाता है। इस प्रकार जो संख्या प्राप्त होती है, पूर्ण अनुष्ठान के लिए साधक को उतनी संख्या में जप करना होता हैं। दस

या बीस प्रतिशत अधिक जप क्यों करना होता है, इसका कारण आगे स्पष्ट किया जाएगा।

मंत्र जप की संख्या के निर्धारण के पश्चात अगला प्रश्न यह है कि अनुष्ठान में कितना समय लगेगा? इसकी गणना इस प्रकार होगी – सवा लाख तथा उसका बीस प्रतिशत जोड़ने पर एक लाख पचास हजार की संख्या प्राप्त होती है। अतः एक प्रारम्भिक साधक को एक अनुष्ठान के लिए 150 मालाएं करनी होंगी। इसके बाद यह देखना होगा कि एक माला में कितना समय लगता है और उसके अनुसार एक घंटे में कितनी मालाएं हो सकती हैं। फिर व्यक्ति एक दिन में अनुष्ठान के लिए कितने घंटे समय नियमित रूप से निकाल सकता है। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए अनुष्ठान में लगने वाले समय का अनुमान लगता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति दिन में दो बार एक – एक घंटे के लिए जप करने बैठता है और एक घंटे में औसतन पांच माला करता है, तो ऐसी स्थिति मे उसे सवा लाख गायत्री का अनुष्ठान पूरा करने में 150 दिन या पांच महीने लगेंगे।

प्राचीन काल में, और आज भी जो लोग पूर्णकालिक साधनामय जीवन व्यतीत करते हैं, सवा लाख का पुरश्चरण न्यूनतम समय में कर लेते हैं। अधिकतम

दीर्घसूत्री पूर्णकालिक साधक भी इसे तीन महीने के समय में कर लेगा। हमारे जैसे लोग जिन पर गृहस्थी अथवा संस्थान की जिम्मेदारी है, उनके लिए पुरश्चरण पूर्ति के लिए समय सीमा निर्धारित न करना ही उचित होगा। क्योंकि ऐसी स्थिति में व्यक्ति पर अपनी जिम्मेदारियां पूरी करके पुरश्चरण पूर्ण करने का दबाव होगा और परिणामतः अनावश्यक तनाव एवं चिंता होगी। यह भी एक प्रकार का व्यवधान उत्पन्न करेगा। इसके स्थान पर व्यक्ति को अपना संकल्प इस प्रकार प्रकट करना चाहिए, "मैं अपना पुरश्चरण अमुक समय में संपन्न करना चाहता हूं; गुरू एवं ईश्वर मेरी सहायता करें।" और उसके बाद अपनी ओर से संकल्प को पूर्ण करने का अधिकतम प्रयास करें।

अब प्रश्न उठता है कि यदि किसी के पास पर्याप्त समय है और इच्छा भी है तो क्या पुरश्चरण बहुत कम समय में भी किया जा सकता है? जब तक कि आप वास्तव में साधना की उच्च अवस्था में न पहुंच गए हों इस प्रकार का प्रयास न करें। मंत्र के देवता या मंत्र में निहित शक्तियां जल्दबाजी नहीं पसंद करती हैं। सूक्ष्म जगत में बहुत से परिवर्तन एक साथ होने से ऐसे तीव्र परिणाम भी आ सकते हैं जिनके लिए आप प्रस्तुत न हों। अतः ऐसे कार्यों में मध्यम मार्ग अपनाना ही सर्वश्रष्ठ है।

यदि व्यक्ति अपने आध्यात्मिक जीवन के प्रति गंभीर है तो अनुष्ठान के दौरान उसे अन्य व्यवधान उत्पन्न करने वाली गतिविधियों में कटौती कर देनी चाहिए, जैसे सामाजिक उत्सव, सिनेमा, टीवी आदि। नींद की आवश्यकता जप की मात्रा में वृद्धि होने से स्वाभाविक रूप से कम हो जाती है। योग निद्रा के अभ्यास से निद्रा की आवश्यकता में और भी कमी की जा सकती है। दिनचर्या में इस प्रकार के छोटे मोटे समायोजन तथा परिवर्तन करके दिन में साढ़े तीन घंटे का समय तो निकाला ही जा सकता है। इसे इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है – एक घंटा प्रातः, आधा घंटा सायं तथा दो धंटे रात्रि में।

कुछ लोग चौबीस लाख गायत्री या बत्तीस लाख मृत्युंजय का पूर्ण पुरश्चरण करते हैं। ये लोग वे होते हैं जिनके पास कोई विशेष सांसारिक उत्तरदायित्व नहीं होते हैं और उन्होंने अपने आध्यात्मिक जीवन की भली प्रकार से योजना बनाई होती है। ये दृढ़ इच्छाशक्ति वाले व्यक्ति होते हैं। ऐसे व्यक्ति उचित मार्गदर्शन में यह कठिन अध्यवसाय करते हैं। उनके मार्गदर्शक गुरू उनकी सफलता के लिए प्रार्थना करते हैं। ऐसे पुरश्चरण को पूर्ण कर लेने वाले व्यक्तियों मे विशेष गुण विकसित हो जाते हैं और बिना किसी प्रयास के साधक उनकी ओर आकर्षित होते हैं।

बताई गई गणना का ध्यान में रखते हुए गायत्री, मृत्युंजय या किसी भी अन्य लंबे मंत्र का पुरश्चरण तीन से पांच वर्षों मे पूर्ण हो सकता है। इसके लिए साधक अपने व्यावसायिक कार्यालय में जाने के स्थान पर ईश्वर के कार्यालय में जाता है और आवश्यक समय बिताता है।

कुछ लोग ऐसे भी हो सकते हैं, जो लाखों की संख्या में मंत्र जप की बात सुन कर ही घबरा उठें। स्वाभाविक भी है क्यों कि बात मंत्र की है, न कि धन संपत्ति की है। ऐसे लोग इस संख्या को टुकड़ों में पूरा करें। उन्हें चाहिए कि वे एक बार में सवा लाख मंत्र करें फिर कुछ दिन के लिए रूक जाएं। फिर सवा लाख जप करें। इसी प्रकार टुकड़ों में वे भी पुरश्चरण पूर्ण कर सकते हैं। इस प्रकार करने से मनोवैज्ञानिक रूप से काम आसान लगता है।

यह स्वाभाविक प्रक्रिया का एक भाग है कि पुरश्चरण के बीच में आपको अप्रत्याशित व्यवधानों तथा अवांछित परिवर्तनों का सामना करना पड़ सकता है। यह प्रक्रिया होम्योपैथिक दवा के समान है। कुछ कर्म तथा संस्कार जिनके फलीभूत होने में एक पूरा जन्म या कई वर्ष लग सकते थे, थोड़े समय में ही परिपक्व हो कर सामने आ जाते हैं। परंतु यह कहते हुए बीच में पुरश्चरण

न छोड़ दें कि यह मंत्र तो बड़ा ही खतरनाक है, मेरे गुरु को इस विषय में कुछ पता तो है नहीं और मुझे व्यर्थ ही मुसीबत में डाल दिया है। ऐसा सोच कर संकल्प छोड़ना उचित नहीं है। यह समय सृजन से पूर्व होने वाले संहार का होता है, पुनर्समायोजन का होता है। जब कठिनाइयों का यह समय बीत जाएगा तो आप पाएंगे कि कर्म क्षय के उपरांत एक नई शुरूआत का समय आ गया है।

यह पूरी प्रक्रिया प्रायश्चित के सिद्धांत पर आधारित है, कर्म के स्वैच्छिक भुगतान पर आधारित है। सच तो यह है कि जब भी व्यक्ति को यह लगे कि उसने एक सार्वभौम विधान का अतिक्रमण किया है, 'पाप' किया है, उसे आत्म शुद्धि के जिए प्रायश्चित तो करना ही चाहिए। कुछ लोग ऐसे अतिक्रमण का प्रयाश्चित करने के लिए गुप्त दान देते हैं, कुछ लोग सेवा कार्य करते हैं या तीर्थ यात्रा पर जाते हैं अथवा उपवास या मौन रखते हैं। सिख परंपरा में एक निश्चित समय तक गुरूद्वारे का फर्श साफ करने का काम करके या वहां आने वालों के जूते साफ करके प्रायश्चित करने की प्रथा भी हैं किंतु इन सभी से अधिक शुद्धिकारक जप है।

इस प्रकार के संकल्प के दौरान व्यक्ति का मन बहुत सी स्थितियों से गुजरता है। कभी खिन्नता होती है तो कभी ऊब होती है, कभी थकान अनुभव होती है तो कभी ऊर्जा का संचार अनुभव होता है। कभी अपूर्व आनंद का अनुभव होता है तो कभी फिर बीच में ही सब कुछ छोड़ देने की इच्छा होती है। दबे हुए संस्कार सतह पर आते हैं और छंट भी जाते हैं। उनके साथ संघर्ष नहीं करना चाहिए। पर साथ ही साधना को बीच में छोड़ नहीं देना चाहिए। मध्य मार्ग अपनाएं स्वयं को क्षमा करें, स्वीकार करें। संकल्प को पूरा करने के लिए दृढ़ रहें। यदि किसी दिन आपको लगे कि थकान के कारण एक माला ही हो सकेगी तो भी जप का अपना नियम न छोड़ें। यह मनः स्थिति भी गुजर जाएगी। थकान में भी जप की गति कम हो जाती है। अतः स्वयं को पर्याप्त विश्राम दें। यह सब जीवन को पुनर्समायोजित तथा व्यवस्थित करने की बात है।

पौष्टिक तथा सात्विक भोजन करना महत्वपूर्ण है। इस प्रकार के अनुष्ठान संपन्न करवाने वाले पुरोहितों को दूध, घी आदि के लिए विशेष दक्षिणा दी जाती है। लोग ऐसे में पोषण के लिए पिसे हुए बादामों वाला गर्म दूध भी लेते हैं। पांच बादाम रात भर भिगो कर प्रातः छील कर, पीस कर तथा एक गिलास दूध में पका कर लेना पर्याप्त होता है। कुछ लोग गर्म दूध

में घी डाल कर भी लेते हैं। एक गिलास गर्म दूध में एक चम्मच पिघला हुआ घी चार पांच पिसी काली मिर्चों के साथ पर्याप्त है। यह अत्यंत पौष्टिक तथा संतुलित अनुपात है। रात के समय केसर के साथ पकाया गया दूध लिया जा सकता है।

अब पुनः हम मंत्र साधना के अपने विषय की ओर वापस लौटते हैं। एक गुरू मंत्र के केवल एक बार प्रयोग के द्वारा ही सूक्ष्म जगत में आवश्यक परिवर्तन लाकर अपना इच्छित कार्य संपन्न कर सकता है अथवा साधकों की सहायता कर सकता है। परंतु वह ऐसा उस स्थिति में ही करता है, जब साधक उस कृपा का आध्यात्मिक लाभ उठाता है और उससे दूसरों की सहायता करता है। किसी भी राह चलते हुए पर ऐसी कृपा नहीं की जा सकती, जब तक कि वह उससे किसी आध्यात्मिक लक्ष्य को नहीं प्राप्त करना चाहता हो।

योग परंपरा मे दीक्षित एक गुरू को, जो कि अभी तक पूर्ण सिद्ध न हुआ हो, उसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अधिक संख्या में जप करना होगा। एक गृहस्थ साधक को उससे भी अधिक समय लगेगा। उसका जप भी अधिक प्रभावशाली होगा, यदि जप आरंभ करने के पूर्व उसने किसी योग सिद्ध गुरू से दीक्षा ले ली

होगी। यजमान के लाभ के लिए संकल्प करके जप करने के लिए किसी सात्विक प्रवृत्ति के पुरोहित को भी नियुक्त किया जा सकता है। किंतु ऐसी स्थिति में यजमान का कर्तव्य होता है कि वह पुरोहित के भरण पोषण का उत्तरदायित्व वहन करे। ऐसी स्थिति में यह ही अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण होता है कि पुरोहित या तो यजमान के स्थान में ही रहे या कम से कम जप करने के लिए रोज वहां आए। क्योंकि ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है, जो कि जप की जिम्मेदारी तो ले लेंगे किंतु पूर्णरूपेण उसे निभाएंगे नहीं। पुरोहित पर किए जाने वाले खर्च के अतिरिक्त यदि होम भी किया जाए तो पुरश्चरण पर आने वाला खर्च और भी बढ़ जाता है। यदि कोई इस प्रकार अनुष्ठान करना चाहता है तो भी उचित यही होगा कि वह दस प्रतिशत जप स्वयं करे।

सवा लाख जप के साथ उसका दस प्रतिशत होम के साथ करना होता है। यदि होम न करना हो तो उसके स्थान पर बीस प्रतिशत जप अधिक करना होता है। ऐसी स्थिति में सवा लाख जप का अनुष्ठान पूर्ण होत–होते 150000 की संख्या हो जाती है।

जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं कि अनुष्ठान आरंभ करने से पूर्व यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि

व्यक्ति को एक माला करने में कितना समय लगता है और वह एक दिन में कितना समय जप के लिए निकाल सकता है। इसी के आधार पर अनुष्ठान में लगने वाले समय का अंदाजा लगाया जाता है।

नए साधक इस बात को लेकर चिंतित रहते है कि लंबे मंत्रों के जप में कितना समय लगेगा। अभ्यास के साथ व्यक्ति मंत्र जप की गति बढ़ाने की कला भी सीखता है। इसका संबंध ज़बान को तेज गति से चलाने से नहीं अपितु मस्तिष्क की उच्चतर कंपन वाली सतहों में जाने से है। व्यक्ति जब गहराई में उतरता है, उसकी जप की गति में स्वतः ही सुधार होता है। पुरश्चरण या अनुष्ठान करते हुए कम से कम दिन में एक बार नियत समय पर बैठना ही चाहिए। दिन के अन्य सत्रों का समय सुविधानुसार बदला जा सकता है। दिन में छोटे – बड़े कितने ही सत्र किए जा सकते हैं किंतु दिन और रात दोनों समय 12 से 3 का समय छोड़ देना चाहिए।

यदि व्यक्ति अस्वस्थ हो, यात्रा में हो अथवा अन्य किसी भी अपरिहार्य स्थिति में पड़ गया हो तो भी नियत समय पर एक माला तो कर ही लेनी चाहिए। नित्य की कड़ी तो बनाए ही रखनी चाहिए। उसमें भी यदि मन स्थिर न हो रहा हो तो उस माला को अपनी

गिनती में नहीं मिलाना चाहिए। इस विषय में कम करने से अधिक करना बेहतर है, यही नियम रखना चाहिए।

पुरश्चरण के लिए एक स्थान पर बैठ कर विधि – विधान से किया गया जाप ही गिना जाता है। इसे गुरू मंत्र के समान चलते–फिरते हर समय नहीं करते हैं। विशेष साधनाओं का आरंभ संकल्प के साथ होता है, जिसमें व्यक्ति की संज्ञा, स्थान, समय, तथा उद्देश्य का वर्णन होता है।

संकल्प में उल्लेख किए जाने वाले उद्देश्य से बहुत अंतर पड़ जाता है। मैं वही महामृत्युंजय मंत्र एक व्यक्ति को स्वास्थ्य लाभ की प्रार्थना के रूप में दे सकता हूं तथा दूसरे को अध्यात्मिक लाभ के लिए दे सकता हूं। अथवा दो उद्देश्य इस विचार से एक साथ जोड़े भी जा सकते हैं कि यदि यह व्यक्ति स्वस्थ हो गया तो अपना जीवन आध्यात्म–लाभ के लिए समर्पित कर देगा। अथवा मैं उसके जीवन के लिए अतिरिक्त समय लेकर, उसके उपयोग मुक्ति के उसके लक्ष्य को प्राप्त करने में करवा दूं। अथवा चूंकि वह मुक्ति के उद्देश्य से अपनी अन्य सांसारिक इच्छाओं का त्याग कर रहा है, अतः उसके पूर्व स्वार्थपूर्ण कर्मों का प्रभाव समाप्त हो जाएगा तथा मुक्ति प्राप्ति के

दौरान ही वह व्याधि से भी मुक्त हो जाएगा। किसी व्यक्ति के लिए यह जप इस उद्देश्य से भी किया जा सकता है कि वह अपनी व्याधियों से मुक्त होकर इस प्रकार बढ़े हुए जीवन काल का उपयोग दूसरों की सेवा में लगाएगा। ऐसी स्थिति मे यदि वह अपने जीवन को परसेवा में समर्पित नहीं करेगा तो उसे बढ़ा हुआ जीवन काल भी नहीं मिलेगा।

किसी समस्या के समाधान के लिए पुरश्चरण करते हुए समस्या के समाधान का तरीका भी निर्धारित करना होता है। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति के विरूद्ध बहुत लंबे समय से मुकदमा चल रहा है और विरोधी पक्ष उससे गहरी शत्रुता मानता है। ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति के पास दो विकल्प हो सकते हैं–वह केस जीत जाए अथवा विरोधी व्यक्ति का हृदय परिवर्तन हो जाए और उनके बीच शत्रुता समाप्त हो जाए। दूसरे विकल्प में समय तो अधिक लगेगा किंतु परिणाम अधिक गहरे तथा स्थाई होंगे। दूसरी ओर यदि कोई किसी ऐसे व्यक्ति का हृदय जीतना चाहता है, जिसकी नाराजगी अस्थाई है तो इस परिवर्तन में कम समय लगेगा।

मैंने ऐसा पाया है कि यदि आप दूसरे व्यक्ति के स्वभाव में परिवर्तन ला कर समस्या का समाधान करते हैं तो

परिणाम बहुधा अस्थाई होते हैं। उसकी सौमनस्यता को उभार कर आप अपनी तात्कालिक समस्या का समाधान तो कर लेंगे। किंतु संस्कारों का वेग प्रबल होता है और लोग पुनः अपने पूर्व स्वभाव को लौट जाते हैं। मैं ऐसी स्थिति में उसी प्रयोग को पुनः दुहराता रहता हूं, जब तक कि उसके पूर्व संस्कार पूर्णतः समाप्त नहीं हो जाते हैं। गुरू अपने शिष्यों में परिवर्तन लाने के लिए ऐसा ही करते हैं।

जब आप किसी व्यक्ति अथवा किसी परिस्थिति में परिवर्तन लाने के लिए जप करते हैं तो किसी से भी इस विषय में कुछ न कहें। उसके सभी बाहरी क्रिया–कलापों से निर्लिप्त रहें। उसके साथ प्रेमपूर्ण बर्ताव करें। अपनी ओर से मित्रता बढ़ाने का कोई अतिरिक्त प्रयास भी नहीं करें। सबसे अच्छा तो यह होगा कि किसी से भी इस विषय में कुछ न कहें। इसे गुप्त रखें। इस विषय में कोई पूछताछ भी न करें कि उस व्यक्ति में कोई परिवर्तन आया अथवा नहीं। किसी प्रकार की चिंता भी न करें। परंतु केवल जप से काम नहीं चलेगा। आपके अपने कर्म भी उस पवित्रता के अनुरूप होने चाहिए जो आप दूसरे व्यक्ति में चाहते हैं। आप एक शत्रु को और अधिक सौम्य बना कर उसे मित्र मे बदल देना चाहते हैं। उसके अंदर शुद्ध तथा श्रेष्ठ गुण उत्पन्न करना चाहते हैं।

अतः आपके अंदर भी मैत्री भाव होना चाहिए। जब तक आपके मन में उसके द्वारा किए हुए अन्याय के प्रति क्षोभ है, उसके अंदर परिवर्तन के लिए प्रार्थना न करें।

एक बार मैंने किसी कठिन परिस्थिति में पड़े हुए व्यक्ति की सहायता करने के लिए उसे एक मंत्र बताया। उस व्यक्ति को किसी पर बहुत अधिक क्रोध था और यह विचार बराबर उसके जप में हस्तक्षेप कर रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि मंत्र का प्रभाव उस स्थिति पर तो नहीं पड़ा अपितु उस व्यक्ति पर हुआ जिसके प्रति जप करने वाले के मन में क्रोध था। मुझे उससे मंत्र का जप रोक देने के लिए कहना पड़ा और एक पुरोहित को रख कर जप पूर्ण करवाना पडा। इसके बाद परिस्थितयों में मनोवांछित परिवर्तन हो गए। अतः एक गुरू को ऐसी किसी भी स्थिति के लिए लगातार सतर्क रहना होता है अन्यथा किसी की बड़ी हानि भी हो सकती है।

किसी ऐसी स्थिति को सुधारने का प्रयास न करें जिसमें सुधार की कोई संभावना ही न हो। यदि आप जानते हैं कि किसी की व्याधि असाध्य है तो उसके लिए मृत्युंजय करने के प्रयास का कोई लाभ नहीं है। ऐसी स्थिति में मृत्यंजय अवश्य करना चाहिए, किंतु

उस व्यक्ति की मानसिक शांति तथा मुक्ति के लिए प्रार्थना के रूप में। असाध्य व्याधि की स्थिति में व्यक्ति की मानसिक शांति के लिए मैं उसे शताक्षर गायत्री का जप करने के लिए कहता हूं। यदि वह व्यक्ति जप करने की स्थिति में नहीं होता तो मैं उसे इयरफोन की सहायता से उसे मंत्र सुनते रहने को कहता हूं। जब गुरूदेव ने मुझे व्याधि दूर करने की विधि तथा मंत्र बताया तो सावधान किया था कि असाध्य बीमारी की अवस्था में मैं इसका प्रयोग किसी पर न करूं। उन्होंने मुझे बताया, "एक बार मैंनें एक असाध्य रोगी पर इसका प्रयोग किया था और इसके परिणामस्वरूप होने वाली बीमारी से उबरने मे मुझे सात वर्ष लग गए।" साथ ही इस प्रकार के वरदान उन लोगों को भी नहीं दिए जाने चाहिए जो अपना जीवन अध्यात्म–जिज्ञासा अथवा पर–सेवा में नहीं लगा देना चाहते हैं।

मैंने अपने अनुभव से एक बात और जो जानी है वह यह है कि यदि व्यक्ति किसी विशेष उद्देश्य के लिए आवश्यक मात्रा से अधिक उसी अभ्यास को करता रहे तो भी कभी–कभी प्रयास विफल हो जाता है। यह इसी प्रकार है जैसे कोई बच्चा लगातार खाना मांगता रहे और मां के खाना देने के बाद भी खाना देने की रट बंद न करें। अब प्रश्न यह है कि यह पता कैसे

चलेगा कि किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए कितने जप की आवश्यकता होगी। यद्यपि यह सब मंत्र–शास्त्र की पुस्तकों में लिखा है किंतु पुनः मेरा अनुभव यही है कि इसकी पूर्ण जानकारी लगातार प्रयास करते रहने से ही होती है।

इस विषय में अपने अंदर के गुरू से भी पूछा जा सकता है। किंतु ऐसी स्थिति में यह अंतर करना बहुत कठिन हो जाता है कि उत्तर अपने अंदर के गुरू ने दिया है अथवा अपने मूर्ख तथा भ्रमित अचेतन ने।

जब आप किसी सांसारिक उद्देश्य से मंत्र कर रहे हों तो संकल्प इस प्रकार से होना चाहिए – "गुरूप्रीत्या महालक्ष्मी प्रीत्यर्थम्" अर्थात् गुरू की प्रसन्नता के द्वारा महालक्ष्मी को प्रसन्न करने के लिए। इसके साथ अन्य शर्तें न लगाएं जैसे कि मुझे एक लाख रूपए का चेक मिल जाए। इसके स्थान पर अपने लिए शर्त रखें, जैसे कि यदि देवी मुझ पर प्रसन्न होंगी तो मैं उनके दिए हुए वरदान का कुछ हिस्सा दान में दूंगा और उस प्रसाद के उपयोग से मैं अपनी सांसारिक जिम्मेदारियों के बोझ को कम करके दूसरों की निष्काम सेवा में लगूंगा। इसके लिए मैं अपने समय तथा धन का दस प्रतिशत भाग ईश्वर, गुरू, देवता तथा मनुष्यों की सेवा में लगा दूंगा। इस प्रकार के संकल्प के बिना स्थिति

यह होती है कि आप देवताओं से अपना काम करने को तो कहते हैं किंतु बदले में आप उनके लिए कुछ नहीं करते है और देवताओं को यह पसंद नहीं है। ऐसी स्थिति में आपको इसका कुछ न कुछ मूल्य चुकाना पड़ता है। अतः उद्देश्य पर अत्यत सूक्ष्मतापूर्वक ध्यान दें, जहां तक हो सके उसे पवित्र तथा परिष्कृत करें और देवता की जप के द्वारा सेवा करें।

एक अन्य प्रश्न जो बहुधा पूछा जाता है वह यह है कि दिन का कौन सा समय जप के लिए सर्वश्रेष्ठ है। इसका उत्तर है कि जो भी समय आपको अनुकूल पड़ता हो, उचित है। किंतु निश्चित समय के लिए वह समय प्रातः काल का हो तो अधिक अच्छा होगा।

किसी अनुष्ठान को प्रारंभ करने के लिए कुछ दिन निश्चित होते हैं। कोई भी अच्छा ज्योतिषी इस विषय में मदद कर सकता है। योगी के लिए तिथि का कोई महत्व नहीं हैं और मैं भी दूसरों के लिए कोई साधना आरंभ करने से पूर्व ज्योतिषी से परामर्श नहीं करता हूं। ऐसा कहा भी गया है कि "मुमुक्षूणां सदाकालः स्त्रीणां कालश्चसर्वदा"। परंतु इस प्रकार की स्वतंत्रता का लाभ उठाने के लिए स्वयं के अंदर एक स्तर तक पवित्रता का होना आवश्यक है।

सबसे अच्छा यज्ञ करना है। यह जप का सर्वोत्तम प्रकार है। परंतु इसमें समय तथा धन दोनों अधिक लगते हैं। सवा लाख आहुति का यज्ञ यदि स्वयं भी किया जाए तो इसमें घी, समिधा, हवन सामग्री आदि की लागत हजारों रूपए होगी। इसे भी यदि पुरोहित के द्वारा करवाया जाए तो खर्च और भी बढ़ जाएगा, क्योंकि वे साथ में और भी बहुत प्रकार की पूजा करवाएंगे।

1990 में जब मैं गृहस्थ था, मुझपर 40000 डालर का व्यक्तिगत कर्ज था। मैं पहले ही परिवार तथा आश्रम का भारी खर्च उठा रहा था, जिसमें बच्चों की मंहगी शिक्षा तथा मेरी यात्रा का खर्च भी सम्मिलित था। अतः मैं ऐसी स्थिति में कदापि नहीं था कि वह कर्ज चुका सकूं। इसके लिए हमारे निवास स्थान पर सवालक्ष लक्ष्मीगायत्री का जप हवन के साथ एक अत्यंत योग्य पंडित के द्वारा कराया गया। तीन से छः महीने के अन्दर अप्रत्याशित रूप से प्राप्त दान से न केवल मेरा कर्ज उतर गया अपितु थोडे से धन से ऋषिकेश फाउंडेशन भी प्रारंभ हो गया। संन्यास लेते समय उसी धन से मैं अपने गुरूदेव के चरणों में देहरादून में बन रहे अस्पताल के निर्माण में सहयोग स्वरूप कुछ ध ान अर्पित कर सका।

पुरश्चरण के लिए एक निश्चित आसन की आवश्यकता होती है और यह संकल्प करना चाहिए कि अनुष्ठान के दिनों में कम से कम एक बार उस आसन पर अवश्य बैठना है। गहन साधना के लिए एक कमरा भी अलग किया जा सकता है, जिसमें दो – एक मोमबत्तियों के बराबर प्रकाश के अतिरिक्त यथासंभव अंधेरा होना चाहिए। पर्दे गहरे रंग के होने चाहिए तथा यदि बाहरी आवाजों से व्यवधान पड़ने की संभावना हो तो जहां तक संभव हो उस स्थान को ध्वनिरोधक बना लें।

यदि किसी विशेष स्थान, आश्रम अथवा संस्थान के लिए आप कुछ करना चाहते हैं तो अनुष्ठान उसी स्थान पर करना लाभकारी होगा। उदाहरण के लिए यदि किसी संस्था के सदस्यों के बीच में संघर्ष है तो एक योग्य मार्गदर्शक उसी स्थान पर ऐसा अनुष्ठान करेगा कि उससे एक शांत सामूहिक मनः स्थिति का निर्माण होगा। यही प्रभाव सौ गुने रूप में प्राप्त किया जा सकता है यदि सौ सदस्य उसे एक समय में करें।

दूसरी ओर ऐसा अनुष्ठान करने के लिए अपने गुरू के आश्रम में भी जाया जा सकता है। यदि अनुष्ठान के बीच कोई समस्या आए तो यह अतिरिक्त रूप से सहायक होता है क्योंकि उसे अपने गुरू से तत्काल

मार्गदर्शन प्राप्त होता है। गुरू की उपस्थिति स्वयं को अनुशासित करने में भी सहायक होती है।

कुछ ऐसे स्थान भी होते है, जहां कुछ विशेष मंत्रों का अनुष्ठान करना विशेष रूप से लाभकारी होता है। जैसे, वाराणसी का श्मशानस्थल मणिकर्णिका घाट मृत्युंजय मंत्र के लिए, हिमालय के गढ़वाल क्षेत्र के गोपेश्वर का अनसूया मंदिर इच्छित संतान प्राप्ति के लिए, दक्षिणभारत का कन्याकुमारी मंदिर इच्छित वर प्राप्ति के उद्देश्य से मृत्युंजय के एक विशेष प्रकार के लिए, आंखों की व्याधि ठीक करने के लिए नयना देवी का मंदिर अथवा उसी उद्देश्य से विष्णुसहस्रनाम का पाठ करने के लिए बद्रीनाथ का मंदिर, गुरूचक्र के विशेष मंत्र की साधना के लिए गढ़वाल में ताड़केश्वर मंदिर है।

एक और तथ्य है जिसका उल्लेख मैं इस आशंका के कारण करने से बचता हूं कि इसका गलत अर्थ लगा लिया जाएगा। कोई यज्ञ, कोई अनुष्ठान बिना दक्षिणा के पूर्ण नहीं होता है। भारत में यह एक साधारण परंपरा है, तथा दूसरी आध्यात्मिक परंपराओं में भी पुरोहित या गुरू को कुछ अर्पित करने का चलन है। पुरश्चरण के दौरान अपनी आय का दस प्रतिषत भाग, यहां तक कि कम से कम एक प्रतिशत भाग,

अलग रख देना उचित है। यह दक्षिणा बहुधा फल, वस्त्र तथा मिठाई आदि के साथ दी जाती है। जप के समान ही यह भी कोई सौदा नहीं है। यदि कोई चाहे तो अपनी पसंद की किसी स्वयंसेवी संस्था को भी दान दे सकता है। किंतु इसे भार की भावना से नहीं अपितु स्वभाविक प्रेम की भावना से करें। यह संपन्न होने का भी एक रहस्य है। अपनी आय का एक प्रतिशत तथा हो सके तो दस प्रतिशत निष्काम भाव से गुप्त दान के रूप में दूसरों के लिए दें। इसके बदले में कुछ इच्छा न करें और यह दसगुना होकर आपको वापस मिलेगा। तथापि किसी अनुष्ठान के लिए विशेष तौर पर नियुक्त किए गए पुरोहित के संदर्भ में उसे दी जाने वाली अतिरिक्त दक्षिणा ऐच्छिक है।

मंत्र जप के साथ उपवास, मौन, तथा ब्रहमचर्य आदि नियमों के पालन की गहन परंपरा रही है। उतने समय के लिए कुछ मांसाहारी व्यक्ति शाकाहारी हो जाते हैं, शाकाहारी व्यक्ति प्याज, लहसुन आदि राजसिक तथा तामसिक भोजन से परहेज करने लगते हैं। या वे नमक खाना छोड़ देते हैं, अथवा बिना मसालों के केवल उबला हुआ भोजन करने लगते हैं। वास्तव में भारत तथा थाइलैंड जैसे कुछ अन्य देशों में लोग यह अवश्य पूछते हैं कि उन्हें अनुष्ठान के काल में जप के साथ किन अन्य नियमों का पालन करना होगा। यद्यपि

पश्चिमी देशों में हम इस प्रकार के संकल्प तथा नियमों के विषय में नहीं कहते हैं, किंतु हर गुरू के हृदय में ऐसे शिष्य पाने की इच्छा होती है, जो इन नियमों के पालन के विषय में पूछे। बहुधा यदि व्यक्ति सप्रयास इस प्रकार के नियम पालन का संकल्प न ले तो भी मंत्र साधना के दौरान ऐसे परिवर्तनों के प्रति स्वभाविक रूझान होता है। व्यक्ति का अनुष्ठान के दौरान बिना किसी प्रयास के स्वभाविक रूप से ही खाने, सोने, बातचीत करने तथा यौन क्रियाओं के प्रति रूझान कम हो जाता है। और तब यह परिवर्तित रूझान आनंददायक अनुभव बन जाता है तथा थोपा हुआ अनुशासन प्रतीत होना बंद हो जाता है। परिणामस्वरूप इससे मंत्र साध ना की गहनता बढ़ती है तथा साधना के फल में भी अभिवृद्धि होती है।

पुरश्चरण शब्द का अर्थ है पैर को आगे बढ़ाना। जब व्यक्ति इस प्रकार की साधना करता है तो यह उसकी आध्यात्मिक यात्रा में एक बड़ी छलांग लगाने के समान होता है। मेरे गुरू कहा करते थे कि बाह्य जगत में कुछ भी परिवर्तन होने के छः महीने पूर्व सूक्ष्म जगत मे परिवर्तन होते हैं। मैंने बहुधा ऐसा पाया है कि किसी विशेष पुरश्चरण के परिणामों को बाहरी संसार में फलीभूत होने में छः महीने तक लग सकते हैं। अतः आज जप समाप्त करें और कल से ही किसी परिणाम

की आशा न करें। अपने कर्म को ईश्वर तथा गुरू के प्रति समर्पित कर दें और इस प्रकार की मनः स्थिति में रहें जैसे आपने कुछ किया ही न हो। यह मनोवृत्ति महत्वपूर्ण है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट: 1
मंत्र के साथ ध्यान के दो अभ्यास

पहला अभ्यास:
मंत्र के साथ ध्यान अभ्यास

1 रीढ़ को सीधा रखते हुए, सर, धड़ और गर्दन को सीधा करके बैठ जाएं।

2 अपने मन को सब ओर से हटा कर अपनी चेतना को केवल उस स्थान तक सीमित करें जहां पर आप बैठे हैं।

3 अपनी चेतना को केवल उतने स्थान तक सीमित कर लें जितना स्थान आपके शरीर ने घेर रखा है। सर से पैर तक अपने शरीर के प्रति सचेत हों।

4 समय के सभी आयामों से अपने ध्यान को हटा कर अपनी चेतना को इस एक क्षण में समेट लें।

5 अपने माथे को शिथिल करें, अपनी भौंहों तथा आंखों को शिथिल करें, अपनें नथुनों को शिथिल करें, अपनें गालों को शिथिल करें, अपनें जबड़ों को शिथिल करें, अपने मुंह के कोनों

को शिथिल करें, अपनी ठोड़ी को शिथिल करें, अपनी गर्दन को शिथिल करें, अपनी भुजाओं को शिथिल करें, अपने हाथों को शिथिल करें, अपनी अंगुलियों को शिथिल करें, अपनी अंगुलियों के पोरों को शिथिल करें। अब धीमी गति से श्वास ले मानों आपकी अंगुलियों के पोरों से श्वास का प्रवाह हो रहा है।

6 अपनी अंगुलियों के पोरों को शिथिल करें, अपनी अंगुलियों को शिथिल करें, अपने हाथों को शिथिल करें, अपनी निचली भुजाओं को शिथिल करें, अपनी उपरी भुजाओं को शिथिल करें, अपने कंधों को शिथिल करें, अपने सीने को शिथिल करें, अपने हृदय मंडल को शिथिल करें। अब धीमी गति में सहज प्रवाह में श्वास लें और छोडें।

7 अपने पेट को शिथिल करें, अपने नाभि मंडल को शिथिल करें, अपने उदर क्षेत्र को शिथिल करें, अपनी जंघाओं को शिथिल करें, अपनी पिंडलियों को शिथिल करें, अपने पैरों को शिथिल करें, अपने पैरों की अंगुलियों को शिथिल करें, और सांस लें। इस प्रकार सांस लें मानों सांस का प्रवाह आपके पूरे शरीर में हो रहा है। सर से पैर तक और पैर से सर

तक धीमी गति से तथा कोमलता पूर्वक पूरे शरीर में श्वास प्रवाहित हो रही है।

8 अपने पैरों की अंगुलियों को शिथिल करें, अपने पैरों को शिथिल करें, अपने टखनों को शिथिल करें, अपनी पिंडलियो को शिथिल करें, अपने घुटनों को शिथिल करें, अपनी जंघाओं को शिथिल करें, अपने उदर मंडल को शिथिल करें, अपने नाभि क्षेत्र को शिथिल करें, अपने पेट को शिथिल करें, अपने हृदय मंडल को शिथिल करें, अपने सीने को शिथिल करें, अपने कंधों को शिथिल करें, अपनी उपरी भुजाओं को शिथिल करें, अपनी कोहनी को शिथिल करें, अपनी निचली भुजाओं को शिथिल करें, अपनी कलाइयों को शिथिल करें, अपनी निचली भुजाओं को शिथिल करें, अपनी कोहनी को शिथिल करें, अपनी उपरी भुजाओं को शिथिल करें, अपने कंधों को शिथिल करें, अपनी गर्दन को सीधा रखते हुए गर्दन की मांसपेशियों को शिथिल करें, अपनी ठोड़ी को शिथिल करें, अपने जबडों तथा मुंह के कोनों को शिथिल करें, अपने कपोलों को शिथिल करें, अपने नथुनों को शिथिल करें, अपनी आंखों तथा भौंहों को शिथिल करें, अपने माथे को शिथिल करें, अपने शीर्ष भाग को शिथिल करें, सांस को इस

प्रकार धीरे–धीरे अंदर लें और छोड़ें जैसे आपके पूरे शरीर में श्वास प्रवाहित हो रही हो। सांस की गति मंद तथा सहज होनी चाहिए और उसमें किसी प्रकार का व्यवधान न हो।

9 अपने पेट तथा तनुपटीय पेशी के धीरे–धीरे श्वास के साथ उठने तथा गिरने पर ध्यान लगाएं। देखें कि किस प्रकार से जब आप सांस अंदर लेते है तो यह भाग शिथिल हो जाता है और जब आप सांस छोड़ते हैं तो संकुचित होता है। श्वास की सहज गति के साथ होने वाली इस प्रक्रिया को ध्यान से देखें।

10 तनुपटीय श्वास पर ध्यान दें।

11 अपने मंत्र को आने दें। मंत्र का आना सहज, सरल तथा स्वाभाविक होना चाहिए। प्रत्येक श्वास तथा प्रश्वास के साथ मंत्र को आने दें, जितनी बार भी यह आए। यदि यह श्वास प्रश्वास की लय में होता है तो ठीक है, अन्यथा इसका प्रयास न करें। प्रक्रिया का सहज तथा स्वाभाविक होना अधिक महत्वपूर्ण है।

12 धीमी तथा सहज गति से श्वास लेते हुए उसके प्रवाह तथा स्पर्श को अपने नथुनों में अनुभव करिए। आपकी श्वास में कोई झटका, रूकावट

या आवाज नहीं होंनी चाहिए। श्वास का स्पर्श अपने नथुनों में अनुभव करते हुए मंत्र को चलने दें। मंत्र श्वास के साथ जिस प्रकार से भी समायोजित हो रहा हो, श्वास में कई बार आरहा हो अथवा कई श्वासों में विभाजित होकर आ रहा हो, उसमे व्यवधान न डालें।

13 यदि आपका मस्तिष्क भटकता है तो पुनः अपने कमर और गर्दन को सीधा करें। अपने पेट, कंधों तथा वक्षस्थ्ल को शिथिल करें। अपने जबड़े तथा माथे को शिथिल करें। पुनः तनुपटीय श्वास पर ध्यान दें।

14 पुनः श्वास का प्रवाह एवं स्पर्श नथुनों पर अनुभव करें। मंत्र को उसकी सहज लय एवं गति में श्वास के साथ समायोजित होने दें।

15 अब आप श्वास पर ध्यान देना बंद कर सकते हैं। सहज, सरल तथा सुविधापूर्ण तरीके से मंत्र को आने दें। मन को मंत्र को स्मरण करने दें।

16 अपने मस्तिष्क को ऐसा करते हुए देखें।

17 मंत्र से अपना ध्यान न हटाएं, स्वयं को शिथिल रखें। मन में मंत्र को आने दें।

18 अब सभी प्रयास छोड़ दें। केवल मन में एक मौन, स्थिरता तथा शांति बनाए रखें।

19 इस विश्रांतिदायक मौन में पुनः मंत्र को उठने दें। निरंतर.......

20 पुनः श्वास के स्पर्श एवं प्रवाह को अपने नथुनों में स्पर्श करें, मानों आपकी श्वास एवं मंत्र आपके मौन रूपी सरोवर से निकलने वाली शांत धारा हों।

21 श्वास के प्रवाह को देखें; मंत्र की उपस्थिति को देखें।

22 अब धीरे से, श्वास एवं मंत्र से बिना संपर्क खोए, अपनी हथेलियों से अपनी आंखों को ढ़क लें। अंतर्मुखी रहते हूए अंतर्मुखी रहते हुए ही धीरे से हथेलियों से बंद रखते हुए अपनी पलकें खोलें। शांति के इस अनुभव का आनंद लेते हुए हाथों को हटा लें।

दूसरा अभ्यासः

मंत्र के साथ एक मिनट का ध्यानाभ्यास

सबसे पहले श्वास की सहायता से नाक को अपने शरीर का केंद्र मानें और तनुपटीय श्वास प्रश्वास पर ध्यान दें।

इस अभ्यास का मुख्य बिंदु अभ्यास के बीच में एक या दो मिनट के लिए किसी भी बाहरी विचार को अंदर न आने देना है।

अब संकल्प करें कि व्यवघानकारी किसी भी विचार को अपने में नहीं आने देंगे।

1 एक मिनट के लिए श्वास को इस प्रकार अनुभव करें मानों आपका पूरा शरीर सर से पांव तक सांस ले रहा हो।

2 नाभि केंद्र में श्वास का अनुभव करें एक मिनट तक।

3 नाक के निचले हिस्से से नाभि केंद्र के बीच श्वास के प्रवाह का अनुभव करें एक मिनट तक।

4 नाड़ी शोधन करें।

5 सक्रिय नथुने में एक मिनट के लिए श्वास को अनुभव करें।

6 एक मिनट के लिए श्वास को दूसरे नथुने में अनुभव करें।

7 दो मिनट तक श्वास को दोनो नथुनों में अनुभव करें।

8 श्वास के प्रवाह को दो मिनट तक दोनों नाड़ियों के मध्य सुषुम्ना में अनुभव करें।

9 दो मिनट तक अपने मन में मंत्र को सुनते हुए सुषुम्ना से श्वास लें।

10 दो मिनट तक मंत्र को केवल दोनो भौहों के मध्य आज्ञा चक्र में अनुभव करें।

11 एक चौथाई मिनट तक पूर्ण मौन का अनुभव करें।

12 एक मिनट के लिए मंत्र के साथ दोनों नथुनों में श्वास के प्रवाह का अनुभव करें।

13 अपनी आंखें खोलें और एक मिनट तक श्वास पर ध्यान देते हुए मंत्र को सुनें।

14 शरीर को हिलाऐं डुलाऐं और विश्राम की स्थिति में आऐं।

परिशिष्ट: 2
विशेष अध्ययन में सहायक पुस्तकें

1 मंत्र की विशेष व्याख्या के लिए देखें *Mantra and Meditation* लेखक –स्वामी वेद भारती

2 दो समानांतर पुस्तके, जिनमें व्यक्तित्व रूपांतरण पर जप के प्रभाव को विशेष रूप से दर्शाया गया है – *In Quest of God: The Saga of an Extraordinary Pilgrimage* लेखक स्वामी रामदास तथा *The Way of a Pilgrim*

3 विस्तृत व्याख्या के लिए देखें *Special Mantra* लेखक स्वामी वेद भारती

मंत्र विज्ञान

दीक्षा एवं अभ्यास

मंत्र एक ध्वनि, एक अक्षर अथवा ध्वनियों का समूह होता है। इसकी सार्थकता इसके अर्थ में नही अपितु अक्षरों के ध्वन्यात्मक स्पंदन में होती है। यह मस्तिष्क को एकाग्रता का केंद्र प्रदान करता है तथा व्यक्ति को उसकी आंतरिक स्थिति के प्रति सजग होने में मदद करता है। यह व्यक्ति के स्व को पहचानने तथा आंतरिक तथा बाह्य संसार में सामंजस्य स्थापित करने का एक तरीका है।

मंत्र एक मित्र के समान होता है, जो एकाग्र होने में मस्तिष्क की मदद करता है और धीरे धीरे साधक को मौन की गहन स्थिति में अंतर्निहित चेतना के केंद्र की ओर ले जाता है। यह आत्मा की भूमि पर बोया गया आध्यात्मिक बीज है। यह एक ऐसा पथप्रदर्शक है, जो व्यक्ति को चेतना के बहुत से स्तरों में ले जाता है और अंततः उसे उस बिंदु पर पहुंचा देता है, जहां व्यक्तिगत चेतना तथा परम चेतना का मिलन होता है।

ध्यान के समय सचेत एवं मौन हो कर मंत्र का प्रयोग करें। अन्य समय में आप इसका प्रयोग सचेतन या अचेतन भाव से कर सकते हैं। समय के साथ आप मंत्र को अपने दैनिक जीवन में भी अपना पथ प्रदर्शक पाएंगे।

Himalayan Yoga
Publications Trust
Swami Rama Sadhaka Grama (SRSG)
Virpur Khurd, Virbhadra Road, Rishikesh-249203 India
Tel : +91-135-2453030, Fax : +91-135-2450831
Email: info@yogapublications.org
www.yogapublications.org

ISBN 978-81-8037-309-7
9 788180 373097